अमर नीतिग्रंथ

संकलनकर्ता, संपादक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ! आपसे सविनय निवेदन है कि मैंने विभिन्न महापुरुषों की नीतियों का अध्ययन एवं अनुशीलन करने के उपरांत ''अमर नीतिग्रंथ'' नामक पुस्तक की रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक में 6 विभिन्न नीतिकारों—कणिक, नारद, विदुर, शुक्र, चाणक्य और भर्तृहरि के चुनिंदा श्लोकों का संकलन किया गया है। इन सब नीतियों में मुझे चाणक्य नीति सर्वप्रिय लगी है। इसके अतिरिक्त मैंने भी ''कपूर नीति'' से श्लोक प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः यह एक विभिन्न नीतियों का खूबसूरत गुलदस्ता आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए अब आप भी इस रूहानी गुलदस्ते रूपी अमर नीतिग्रंथ के फूलों को देखिए और झूम-झूम कर आनंदविभोर हो जाइए। पढ़िए, समझिए और करिए।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचन्द चौहान, नरेन्द्र आहूजा ''विवेक'' रोशन लाल अग्रवाल, जय किशन, नरेश बंसल आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। श्री लालचन्द चौहान ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके सहयोग के बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों में से उद्धृत संदर्भ उद्धृत किये गये हैं।

जिस अचिन्त्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्त रूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 17.1.2016

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

श्री धर्मपाल कपूर जी बड़े ही स्वाध्यशील तो हैं ही बल्कि स्वाध्याय करके विद्वानों के ग्रंथों से जीवन उपयोगी एवं मानव चरित्र निर्माण सम्बन्धी अत्यन्त उपयोगी बातों का संकलन, लेखन एवं पुस्तक के रूप में पाठकों को निःशुल्क वितरण करते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के बगैर न तो व्यक्ति की उन्नति हो सकती है और न ही समाज, राष्ट्र की। आध्यात्मिक ज्ञान ही सत्य-असत्य का ज्ञान कराता है। उन्नति के लिए तीन तत्त्वों का समन्वय होना आवश्यक है। शारीरिक बल, समाज की एकता का बल और आध्यात्मिक ज्ञान का बल। इन तीनों के बगैर किसी की भी उन्नति संभव नहीं है। ज्ञान के बगैर शारीरिक बल से दूसरों का विनाश ही हो सकता है, विकास नहीं। श्री धर्मपाल कपूर जी ने इस अमर नीतिग्रंथ में उच्च कोटि के प्रसिद्ध सुविख्यात विद्वानों के नीति शास्त्रों को एक अमर नीतिग्रंथ में संकलित करने का बड़ा ही उत्तम व सराहनीय कार्य किया है। यह पुस्तक पाठकगणों को न केवल ज्ञान वृद्धि में सहायक होगी बल्कि सन्तान के निर्माण, परिवार की सुख शान्ति एवं दुर्गुणों के त्याग और धर्म कार्यों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा भी देगी। ज्ञान के बिना मनुष्य जीवन अधूरा है। आशा है यह पुस्तक पाठकगणों के लिए लाभप्रद एवं ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में विद्वानों की पुस्तकों (ग्रंथों) का संग्रह निम्न प्रकार से किया गया है।

1. कणिकनीति–कणिकनीति के 93 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
2. नारदनीति–नारदनीति के 129 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
3. विदुरनीति–विदुरनीति के 235 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
4. शुक्रनीति–शुक्रनीति के 150 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
5. चाणक्यनीति–चाणक्यनीति के 344 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
6. भर्तृहरिशतक–भर्तृहरिशतक के 51 श्लोकों का हिन्दी भाष्य
7. कपूरनीति–लेखक ने 100 नीतियां पुस्तक में शामिल की हैं।

उक्त विद्वानों के संग्रहों को अमरनीति ग्रंथ में संग्रह करके श्री

कपूरजी ने गागर में सागर भर दिया है अन्य ग्रंथों को अर्थात् अन्य विद्वानों के विचारों को एक पुस्तक में ही संग्रहित करके बड़ा ही उपकार का सराहनीय कार्य किया है। मैंने उक्त नीतियों को पढ़ा है, मुझे इनमें कुछ बातें प्रक्षिप्त लगती हैं जो कि उक्त विद्वानों के मतों से मेल नहीं खाती हैं। पाठकगण अपनी बुद्धि से मनन विचार करके सत्य-असत्य, ठीक-गलत, मान्य-अमान्य बातों के संबंध में स्वयं निर्णय करें तो बहुत ही अच्छा होगा, क्योंकि सत्य और असत्य का ज्ञान न होने पर असत्य बातों पर भी विश्वास कर लिया जाता है। जो लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं। हमें वेद विरुद्ध किसी भी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिये। जो आप्त पुरुषों की मान्यता के विपरीत हों वह भी मान्य नहीं है, और जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध हो वह भी अमान्य है। सत्य ही धर्म है–

धर्म की रक्षा सत्य से होती है, अभ्यास से विद्या की, बुद्धि से रूप की और सदाचार से कुल की रक्षा होती है। कुल से परिवार की, परिवार से समाज की और समाज से राष्ट्र की सुरक्षा होती है। राष्ट्र रहेगा तो हम रहेंगे और राष्ट्र नहीं तो हम कहाँ रहेंगे। मानव चरित्र निर्माण से ही राष्ट्र का निर्माण होता है और मानव का निर्माण सत्य ज्ञान से होता है। इसलिए हमें सत्य को अपनाना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के नियम में यह नियम सम्मिलित किया जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत रहना चाहिए। सत्यः परमोधर्मः। सत्य ही परम धर्म है और सत्य की हमेशा विजय होती है। असत्य से केवल विनाश होता है।

अन्त में मैं श्री धर्मपाल कपूर जी की लम्बी आयु की ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर उन्हें निरोगता दे ताकि अधिक समय तक वह अपने लेखन कार्य से जनता का उपकार करते रहें।

दिनांक 21.7.2016

लालचन्द चौहान
591/12, पंचकूला
(हरियाणा) 134112
फोन : 0172-2563079
मोबाइल : 0-9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	कणिकनीति	1
2.	नारदनीति	11
3.	विदुरनीति	25
4.	शुक्रनीति	59
5.	चाणक्यनीति	81
6.	भर्तृहरिशतक	134
7.	कपूरनीति	145

1. कणिकनीति

1. पाण्डुपुत्रों (युधिष्ठिर आदि) को वीर, बलाधिक (अर्थात् दुर्योधन आदि से बल में बहुत अधिक) तथा महान् ओजस्वी जानकर राजा धृतराष्ट्र व्याकुल होकर चिन्तित हो उठा। तब राजशास्त्र (राजनीति-शास्त्र) के रहस्य में निपुण मन्त्रज्ञ (मन्त्रणा में कुशल) मन्त्रियों से श्रेष्ठ कणिक को बुलाकर धृतराष्ट्र ने यह वचन बोला।

2. वर्तमान की परिभाषा में जिसे राजनीतिशास्त्र कहा जाता है, उसे यहाँ राजशास्त्र कहते हैं। राजा=राज्यकार्य्यकर्त्ता जिन नियमों और व्यवस्थाओं से राजतन्त्र का संचालन करते हैं; उसे राजशास्त्र कहते हैं।

3. धृतराष्ट्र बोला—पाण्डव बलशाली हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! उनसे मैं नित्य ईर्ष्या करता हूँ। उस विषय में सन्धि (मेल) तथा विग्रह (झगड़े) का अत्यन्त निश्चायक हेतु तुम मुझे बताओ। हे कणिक! मैं तुम्हारी बात मानूंगा।

4. वैशम्पायन ने (जनमेजय से) कहा—उस (धृतराष्ट्र) से वह प्रसन्नचित ब्राह्मण सत्कृत होकर राजनीतिशास्त्र के रहस्य को जताने वाला तीक्ष्ण वचन बोला।।

5. कणिक बोला—हे अनघ (निर्दोष) राजन्! उस विषय में मेरा कथन सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ! उसे सुनकर मुझसे द्वेष न करना।

6. राजा नित्य दण्ड देने में तत्पर रहे। सदा पुरुषार्थ में तत्पर रहे। स्वयं छिद्ररहित होकर पराये छिद्रों (दोषों-न्यूनताओं) का ज्ञाता हो, तथा दूसरे के छिद्रों के अनुसार कार्य करे।

7. दण्ड देने में नित्य उद्यत (राजा) से संसार ही लगातार भय खाता है। अतः सब कार्यों का दण्ड द्वारा ही संचालन करें।

8. इसके छिद्र को दूसरा न देख सके, और यह स्वयं दूसरे के छिद्र का पीछा करे (अर्थात् उसकी दुर्बलता से लाभ उठाए)। कूर्म (कछुये) की भाँति अपने अंगों की रक्षा करें, और अपने छिद्र को बचाये रखें (अर्थात् अपनी दुर्बलता का शत्रु मित्र किसी को भी पता न लगने दे।

9. कार्य आरम्भ करके कभी भी असभ्यकृतकारी (बुरी तरह करने वाला) न होवे। अतः बुरी तरह काटा हुआ - अंग से निकाला हुआ कांटा भी देर तक खून निकाल सकता है। अपकार करने वाले शत्रुओं की हत्या ही (विद्वान् लोग) उचित मानते हैं।

10. राजशासन का कार्य या शत्रुदमन का कार्य ढिलमिल ढंग से नहीं चल सकता। जब ऐसा कोई आरम्भ कर दिया गया हो, तो उसे मध्य में छोड़ना अथवा बेदिली से करना कदापि उचित नहीं है।

11. जब-जब आपत्ति आए, तब-तब समय के अनुसार तोड़फोड़ श्रेष्ठ विक्रम, प्रबलयुद्ध तथा युक्तिपूर्वक पलायन (युद्ध छोड़ कर भाग जाना) भी कर ले। इसमें विचार न करें। हे प्रिय! दुर्बल शत्रु से भी किसी प्रकार बेपरवाई न करे। आश्रय पाकर थोड़ी सी भी आग सम्पूर्ण वन को जला सकती है।

12. अन्धकार के समय अन्धा हो जाए। समय पड़ने पर बहिरेपन को भी धारण कर लेवे।

13. तिनके का तीर बना लेवे और हिरण के समान (गहरी नींद भी) सो ले। वश में आए हुए शत्रु को सान्त्वना (मीठी बातचीत) आदि उपायों के द्वारा मार डाले।

14. यह शरणागत है, इस कारण उस पर दया नहीं करनी चाहिए। क्योंकि तब वह निरुद्विघ्न (घबराहट से रहित,

निश्चिन्त) होता है। उसकी हत्या से किसी प्रकार का भय नहीं होता।

15. शत्रु तथा पूर्व के अपकारी (जिसने पहले कभी हानि पहुँचाई हो) को दान के द्वारा मार डाले (अर्थात् कुछ दे दिला कर उसका पत्ता काट दे)।

16. शत्रुपक्ष के तीन, पांच अथवा सात को सर्वथा मार दे। सदा शत्रुपक्ष के मूल को ही पहले काटे। उसके पश्चात् उसके सहायकों और उसके पश्चात् उस पक्ष के सभी लोगो को मार दे।

17. जड़ काटने पर उसके आश्रय में रहने वाले सभी मर जाते हैं। वृक्ष की जड़ कट जाने पर शाखाएं कैसे ठहर सकती हैं?

18. एकाग्र (सावधान) (एक=शत्रु ही को जिसने अग्र लक्ष्य रखा हुआ है) होकर कार्य तत्पर तथा सदा पराए छिद्र का ज्ञाता रहे। हे राजन्! इस प्रकार शत्रुओं के विषय में राजा उद्विघ्न होकर व्यवहार करे।

19. अग्निहोत्र के द्वारा, यज्ञ के द्वारा, काषाय (संन्यासवेष) के द्वारा, जटाओं तथा मृगचर्म्म-धारण के द्वारा लोगों (संसार) को विश्वास दिलाकर पश्चात् भेड़िये के भाँति काट करे।

20. धनों के विनियोग के सम्बन्ध में (विद्वान् लोग) शौच अर्थशुद्धि को अंकुश कहते हैं। फलयुक्त शाखा को झुकाकर पके-पके को काट ले। संसार में ज्ञानी मनुष्यों का फलों के लिए ऐसा आरम्भ उद्योग होता है।

21. जब तक समय का फेर है तब तक शत्रु को कन्धे पर चढ़ाए रखे। तत्पश्चात् समय पलटने पर उसे फोड़ डाले, जैसे पत्थर पर घड़े को।

22. बहुत दीन वचन कहने पर भी शत्रु को नहीं छोड़ना चाहिए। उस पर दया नहीं करनी चाहिए। अपकारी को मार ही देना चाहिए।

23. शत्रु को सांत्वना - मीठे वचनों; अथवा दान से भी, और भेद (फूट-डलवाकर) तथा दण्ड से भी मार दे। सभी उपायों से उसे काटे।

24. धृतराष्ट्र ने पूछा—मुझे यह ठीक-ठीक बताइए, शत्रु मीठी बातों से, दान से, अथवा भेद और दण्ड से कैसे मारा जा सकता है।

25. कणिक ने उत्तर दिया - हे राजन्! पूर्व काल के वनवासी नीतिशास्त्र के रहस्यवेत्ता जम्बुक (गीदड़) के साथ जैसी बीती, महाराज! उसे सुनो।

26. एक बुद्धिमान, स्वार्थपरायण गीदड़ अपने मित्रों (बाघ, चूहा, भेड़िया तथा न्योला) के साथ रहता था।

27. उन्होंने उस वन में एक बलवान् हरिणों के रेवड़ के नेता को देखा। उसको पकड़ने में असमर्थ होकर वे विचारने लगे।

28. गीदड़ बोला - हे व्याघ्र! तूने बार बार इसे मारने का यत्न किया है; किन्तु वह युवक, वेगवान् (दौड़ने में तीव्र गति वाला) बुद्धिमान तुझसे मारा नहीं जा सका। (किन्तु मैं उपाय बतलाता हूँ)।

29. इस सोए हुए के पांवो को चूहा काट खाए। इसके चरणों के खाये जाने पर बाघ, इस को वश में करले।

30. उसके पश्चात् हम सब प्रसन्न मन होकर इसे खायेंगे।

31. गीदड़ के उस वचन पर सबने सावधान होकर आचरण किया। चूहा के द्वारा उस के चरणों के तनिक काटे जाने पर तब बाघ ने मृग को मार दिया।

32. मृग की देह को भूमि पर चेष्टारहित (गतिशून्य) देखकर गीदड़ ने (अपने साथियों से) कहा - 'तुम सब स्नान करके आओ, तुम्हारा भला हो (तब तक इसकी) मैं रक्षा करता हूँ ।

33. श्रृगाल के कहने से तब वे सब नदी पर गए । उसके पश्चात् वह जम्मुक चिन्तामग्न होकर वहां ही ठहर गया ।

34. इसके पश्चात् महाबली व्याघ्र सबसे पूर्व स्नान करके आ गया और उसने गीदड़ की चिन्ता से व्याकुलचित्त देखा ।

35. व्याघ्र ने पूछा - हम सब से अधिक बुद्धिमान हे महाप्राज्ञ ! तुम क्या सोच कर रहे हो ? आज मांस खाकर हम विहार करेंगे (घूमें फिरेंगे) ।

36. गीदड़ बोला - हे महाबाहो । जो वचन मुझसे चूहे ने कहा है वह तुम सुनो ! मृगराज (व्याघ्र) की शक्ति को धिक्कार रहा है ।

37. यह मृग आज मैंने मारा है । व्याघ्र आज मेरे बाहुबल का आश्रय करके तृप्ति प्राप्त करेगा । इसलिए इस प्रकार उस गर्जना करने वाले का भोजन मुझे नहीं रुचता है ।

38. व्याघ्र बोला - यदि वह ऐसा कहता है, तो मुझे ठीक समय पर सुझाव दिया है । मैं अपने बाहुबल के सहारे जंगली पशुओं को मारूँगा, और तब वन में माँस खाऊँगा । ऐसा कह कर वह वन में चला गया ।

39. इसी समय चूहा भी आ गया । उसे आया देख कर गीदड़ ने यह वाक्य कहा ।

40. गीदड़ बोला - 'हे मूषिक (चूहे) ! तेरा भला हो, सुन । जो यहाँ नकुल (न्योला) ने कहा, मैं मृग का मांस नहीं खाऊँगा; यह तो विष है । अतः मुझे नहीं रुचता ।

41. मैं चूहा को खाऊँगा, इसकी आप (गीदड़) अनुमति दीजिए ।

42. इस वाक्य को सुनकर डर कर चूहा बिल में चला गया । हे राजन् ! उसके पश्चात् स्नान करके भेड़िया वहाँ आ गया । उसको आया देख कर तब जम्बुक ने यह वाक्य कहा ।

43. व्याघ्र ! मृगराज बहुत क्रुद्ध हैं, तेरा भला नहीं करेगा । वह पत्नी समेत यहाँ आ रहा है, इस विषय में जो करना हो शीघ्र कर लो ।

44. इस प्रकार उस गीदड़ से प्रेरित होकर तब मांसभक्षी भेड़िया भाग कर चला गया । इसी समय नकुल भी आ गया । हे महाराज ! गीदड़ ने वन में उस न्योला को कहा ।

45. अपने भुजबल से मैने सब को हरा दिया है, और वे दूसरे स्थान में चले गए हैं ।

46. मेरे साथ युद्ध करके तू यथेच्छ माँस खा ।

47. न्योला बोला – जो तुम ने मृगराज (व्याघ्र), भेड़िया और बुद्धिमान् चूहा भी - ये वीर जीत लिए हैं ।

48. अतः तू वीरवर है । मैं भी तुम्हारे साथ युद्ध करने का उत्साह नहीं करता । इतना कह कर वह भी चला गया ।

49. कणिक ने कहा – इस प्रकार उन सब के चले जाने पर प्रसन्नचित हुआ जम्बुक अपनी धारणा की दृढ़ता से अकेला ही माँस खाता रहा ।

50. इस प्रकार व्यवहार करने वाला राजा सुख को बढ़ाता है । भीरू को भय से डराये और शूरवीर को अञ्जलिकर्म्म (विनम्रता से) फोड़े ।

51. लालची को धन दान के द्वारा, अपने समान एवं न्यून को ओज से फोड़े । हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हे (नीतिशास्त्र का व्यवहार) बतलाया है ।

52. और भी सुनो; चाहे पुत्र हो, मित्र हो, अथवा पिता हो और चाहे गुरु भी हो; यदि वे शत्रु स्थान में व्यवहार करें, तो कल्याण के अभिलाषी द्वारा वे मार देने चाहिएं ।

53. शत्रु को शपथ से मार दे, अथवा पुनः धन दान के द्वारा, विष देने से अथवा माया ठगी, छल से मार दे, ताकि भाँति की उपेक्षा न करे । दोनों यदि संशययुक्त हों, तो उनमें से श्रद्धायुक्त की वृद्धि होती है (विजय होता है) ।

54. अहंकारयुक्त, कर्त्तव्य के ज्ञान से शून्य और कुमार्गगामी गुरु का भी शासन करेगा (दण्ड देना) न्यायसंगत है ।

55. क्रोधयुक्त होकर अक्रुद्ध रूप (अर्थात् इंगित चेष्टित, आकार प्रकार से क्रोध प्रगट न करता) हुआ मुस्करा कर बोले । क्रोध से युक्त होकर कभी दूसरे का नाश न करे । (अर्थात् हँसते-हँसते दूसरे को मार दे)

56. प्रहार करने की इच्छा करके तथा प्रहार करता हुआ भी प्रिय बोले । प्रहार करके कृपा प्रदर्शित करे, शोक करे तथा रोए ।

57. शत्रु को मधुर भाषण से, धर्म, अर्थ के व्यवहारों से आश्वासन भी देवे, और जब वह मार्ग में विचलित हो, तो समय पहचानकर उस पर प्रहार कर दे ।

58. घोर अपराध करने वाले का - चाहे वह आपत्ति में धर्म पर श्रद्धा रखने वाला हो - (वध कर दे) क्योंकि इसका वह दोष इस प्रकार छिप जाता है, जिस प्रकार काले मेघ से पर्वत ।

59. जिसके वध का अवसर आ गया हो (आवश्यकता पड़ने पर) उसका घर जला दे । निर्धनों, नास्तिकों तथा चोरों को अपने देश में न बसने दें ।

60. आने पर स्वागतादि आसनादि के द्वारा अथवा किसी उत्तम दान के द्वारा विश्वस्त हुए को मार देवे; जिस प्रकार तीक्ष्ण दाढ़ों वाला निमग्नक ।

61. निःशंकों से भी शंका करें और सशंकों से तो सर्वथा ही शंका करें । आशंकित मनुष्य से उत्पन्न हुआ भय जड़ को भी काट देता है ।

62. अविश्वस्त पर विश्वास न करें, और विश्वस्त पर भी अधिक विश्वास न करें । विश्वास से उत्पन्न हुआ भय जड़ों को भी काट देता है ।

63. अपने तथा पराये प्रदेश में विधियुक्त (सुचतुर) चार - गुप्तचर नियुक्त करने चाहिएं ।

64. पराये राज्यों में, उद्यानों में, मठो में, मन्दिरों में, पानागार (शराब तथा चास शरबत की दुकानों) में, गलियों में तथा सब प्रकार के सम्मेलनों में ।

65. तथा नदियों में अर्थात् नदी तटों पर लगने वाले स्नानार्थियों के मेलों में (गुप्तचरों को) पाखण्डी तथा तपस्वी आदि का वेश बना कर विचराये ।

66. वाणी में अत्यन्त विनम्र होवे किन्तु हृदय में छुरा हो । भयंकर कर्म में प्रवृत होकर भी मुस्कराकर बोलने वाला हो ।

67. कल्याणाभिलाषी को हाथ जोड़ना, शपथ, मधुर वचन, सिर से चरणों में पड़ना और आशा दिलाना इत्यादि सब करना चाहिए ।

68. फूल तो बहुत दिखाए, किन्तु फलरहित रहे । फलयुक्त होने पर भी दुरारोह (जिस पर कठिनता से चढ़ा जाए ऐसा) हो । कच्चा होता हुआ पके के समान होवे, किन्तु पके कभी भी नहीं ।

69. त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ तथा काम) में तीन प्रकार की पीड़ा और वैसे ही तीन प्रकार का फल होता है । अनुबन्धों - फलों को शुभ जानना चाहिए और पीड़ाओं को त्याग दे ।

70. धर्माचरण करने वाले को पीड़ा होती है, वह भी दो (अर्थ और काम) से नियन्त्रित होती है । अर्थ के लालची को अर्थ तथा अतिविषयासक्त को काम दबाता है ।

71. राजा निरभिमान, सावधान, माधुर्य सूक्त, ईर्ष्या न करने वाला, कार्य की जांच रखने वाला, पवित्रात्मा होता हुआ द्विजों के साथ मन्त्रणा करे ।

72. जिस किसी कोमल अथवा कठोर कर्म के द्वारा अपने दीन आत्मा का उद्धार करें और समर्थ होकर धर्म का आचरण करें ।

73. मनुष्य संशय पर चढ़े बिना कल्याणों का दर्शन नहीं कर पाता । हाँ ! संशय पर चढ़कर यदि कोई जीवित रहता है, तो अवश्य दर्शन करता है ।

74. जिसकी बुद्धि दब जाए (हार जाए) उसे पुरानी बातों से सांत्वना देवे । मूर्ख को भविष्यत् की बातों से तथा बुद्धिमान् को प्रत्युत्पन्नमति (तात्कालिक सूझ) से फुसलाए ।

75. जो शत्रु के साथ सन्धि करके कृतकृत्य (सफल, अपना कार्य कर चुका हुआ) होकर सोता है, वह ऐसा है, जो वृक्ष के अग्र भाग पर सोकर गिरने से जागता है ।

76. मन्त्र (गुप्त विचार) के संवरण (रक्षा करने, गुप्त रखने) में असूयारहित होकर सदा यत्न करना चाहिए । चार (गुप्तचर) से रक्षित होकर अपने आकार (इंगित चेष्टित) को भी छिपा रखे ।

77. पराये मर्मों को काटे बिना, कठोर कार्य किए बिना, मत्स्यघाती की भांति मारे बिना महती राजलक्ष्मी को प्राप्त नहीं कर सकता।

78. शत्रु की दुबली, रोगी, पसीने से तर, प्यासी, भूखी, अत्यन्त विश्वस्त होकर शिथिल पड़ी हुई सेना पर प्रहार करना चाहिए।

79. याचक याचक के पास नहीं जाता। सफल का असफल के साथ मेल नहीं होता। अतः सब साध्यों को साविशेष (अपूर्ण) रखे। आर्थिक दृष्टि में यथाकाल टोटे का बजट रक्खें।

80. संग्रह तथा विग्रह में भी असूयारहित होकर यत्न करना चाहिए। कल्याणाभिलाषी को उत्साह भी यत्न से करना चाहिए।

81. इसके कार्यों को मित्र तथा शत्रु न जान पाएं। आरम्भ होने पर तथा समाप्त हुओं को ही वे देखें।

82. जब तक भय नहीं आया तब तक भयभीत की भाँति कार्य करते रहना चाहिए। भय को आया देखकर निर्भय की भाँति प्रकार करें।

83. दण्ड से झुके शत्रु पर जो मनुष्य दया करते है, वह ऐसे ही मृत्यु को पकड़ता है, अश्वतरी (खचरी) गर्म है।

84. जो कार्य सामने स्थित है। उसको अनागत ही जानें, बुद्धिक्षय के कारण किसी प्रयोजन का उल्लंघन न करें।

85. कल्याणाभिलाषी को देश काल, भाग्य एवं धर्मादि का विवेचन करके ही यत्न से उत्साह करना चाहिए। इस प्रकार के देश काल परमकल्याणकारी होते हैं। ऐसा सिद्धान्त है।

86. तुच्छ शत्रु भी उपेक्षित हुआ ताल वृक्ष की भाँति जड़ पकड़ लेता है, जैसे वन मे फेंकी अग्नि शीघ्र फैल जाती है ।

87. जो मनुष्य अपने को थोड़ी अग्नि की भांति धौंकाता रहता है (प्रदीप्त करता है); वह बढ़ कर महान् संशय को भी निगल लेता है ।

88. (दूसरे की) आशा को कालवाली करे (अर्थात् अमुक समय में तुम्हारा कार्य कर देंगे, ऐसी आशा दिलाता रहे) और उस समय को विघ्नयुक्त कर दे । (अर्थात् आशित समय आने पर किसी विघ्न का निर्देश कर दे) । विघ्न का कोई निमित्त बना दे, और उस निमित्त का कोई अन्य कारण बता दें ।

89. समय रूपी साधन पाकर, गुप्त होकर, शत्रुओं का विनाशक बनकर तीक्ष्ण लोमहारी छूरे की भाँति प्राणों पर प्रहार करे ।

90. हे कुरुकुल के नेता ! पाण्डवों तथा अन्यों के प्रति न्याययुक्त, व्यवहार करते हुए जिससे तुम न डूबो, ऐसा कार्य करो ।

91. सब कल्याणों से सम्पन्न मनुष्य ही विशिष्ट होता है, ऐसा निश्चय है । अतः हे राजन् ! तुम पाण्डवों से अपनी रक्षा करो ।

92. क्योंकि पाण्डव भ्रातृत्व (भतीजे तथा शत्रु) और बलवान् हैं, इसलिए हे राजन् ! ऐसी नीति कीजिए जिससे पश्चाताप न करना पड़े ।

93. ऐसा कहकर कणिक अपने घर चले गये और कौरव धृतराष्ट्र भी शोक को प्राप्त हुआ ।

—महाभारत (आदिपर्व अध्याय 140)

2. नारदनीति

1. उस सभा में पाण्डवों के बैठे-बैठे तथा बड़े-बड़े महात्माओं और गन्धर्वों के बैठे-बैठे, हे भारत !
2. वेदों और उपनिषदों का वेत्ता ऋषि, सुरहसुह से पूजित, इतिहास और पुराण के जानने वाला, पुराकल्प (पुराने रीतिरिवाजों) का विशेष ज्ञाता;
3. न्याय जानने वाला, धर्म के तत्वों को जानकर, वेदों के छह अंगों का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता; एकता, संयोग, नानात्व, समवास तथा मेल में निपुण;
4. प्रौढ़ वक्ता, मेधाबुद्धिसम्पन्न, स्मृतिवान्, नीतिज्ञ, कवि पर तथा अपर के विभागों का ज्ञाता, प्रमाणों के द्वारा निश्चय करने कराने वाला;
5. पंच अवयवों वाले वाक्य के गुणदोषों का जानने वाला, बोलते हुए, बृहस्पति के भी उत्तरोत्तर बोलने वाला;
6. धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष के विषय में यथायोग्य यथार्थ निश्चय करने वाला, इस सम्पूर्ण भुवन कोश का महाज्ञाता;
7. इस संसार के ऊपर नीचे एवं तिरछे का प्रत्यक्षदर्शी । सांख्य योग के उपयोग का ज्ञाता तथा देवों और असुरों को निर्देश-वैराग्य कराने का इच्छुक;
8. सन्धि एवं विग्रह का तत्त्वज्ञ, अनुमान का भेदज्ञ, षाड्गुण्य के विधान का जानकार, सब शास्त्रों में निपुण;
9. युद्ध तथा गान्धर्व विद्या का सेवी, सर्वत्र (सर्वशास्त्रों में) अप्रतिहतगति, तथा;
10. अन्य अनेक गुणों से युक्त, अमित कान्ति वाला, देवर्षि महातेजस्वी, नारद मुनि, हे नृप !
11. पारिजात और बुद्धिमान पर्वत तथा सौम्य सुमुख नामक ऋषियों के साथ, हे राजेन्द्र ! सब लोकों में विचरता हुआ;

12. उस सभा में सभास्थ पाण्डवों को देखने के लिये आया। मनोवेगी प्रसन्नचित ब्राह्मण ने उस धर्मराज को आशीर्वादों से सुकृत्य किया।

13. उस नारद ऋषि को अचानक आया देखकर सर्व कर्त्तव्यों के जानने वाले पाण्डवश्रेष्ठ (युधिष्ठिर) ने विनयावत होकर अपने भाइयों के साथ उसका प्रत्युत्थान (स्वागत) करके प्रेम से अभिवादन किया।

14. विधिपूर्वक उसके योग्य आसन देकर तथा वाणी बोलकर एवं;

15. मधुपर्क तथा अर्घ्य देकर उस धर्मवेत्ता (युधिष्ठिर) ने रत्नों तथा सब कामनाओं से उसकी पूजा की।

16. युधिष्ठिर से यथायोग्य पूजा प्राप्त करके और सब पाण्डवों से सत्कृत होकर वह वेदपारगामी (नारद) सन्तुष्ट हुआ। इसके पश्चात् उसने युधिष्ठिर से धर्म अर्थ तथा काम सम्बन्धी यह प्रश्न किया।

17. आपके धन तो सफल होते हैं, और धर्म में भी आपका मन लगता है न? सुखों का अनुभव होता है न? और मन ऊब तो नहीं जाता?

18. अपने पूर्वज बाप-दादों के आचरित कार्यों में, हे राजन्! उत्तम, मध्य, अधम पुरुषों के प्रति धर्म और अर्थ से युक्त उदार व्यवहार का बर्ताव तो करता है न?

19. क्या अर्थ के (लोभ) द्वारा धर्म का घात तो नहीं करते हो, अथवा धर्म के (जोश) द्वारा अर्थ का विघात तो नहीं करते हो? अथवा प्रीतिपूर्ण काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों का नाश तो नहीं करते हो?

20. हे विजयी श्रेष्ठ! हे सदावरद! कालज्ञ (समयानुसार उचित कार्य करने का ज्ञानी) होकर, समय का विभाग करके धर्म अर्थ तथा काम का सेवन तो करते हो ना?

21. हे अनघ = निर्दोष ! क्या छह राजोचित गुणों के द्वारा सात उपायों और चौदह की परीक्षा तो करते हो न ?

22. हे जिषणुप्रवर भारत ! क्या अपने बल तथा शत्रुओं की जांच कर, तथा शत्रुओं के साथ अवसरोचित सन्धि करके आठ कर्मों को सेवते हो क्या ?

23. हे भरतश्रेष्ठ ! कहीं तेरी सात प्रकृतियां (विरोधियों के द्वारा) अपनी वास्तविक स्थिति को खो तो नहीं बैठी ? तथा धनसम्पन्न होकर व्यसनी तो नहीं बन गई ? वे तुझ पर बहुत अनुरक्त तो हैं न ?

24. कहीं बनावटी दूतों के द्वारा वे लोग तो तुझ से नहीं फोड़े जाते, जो सर्वथा अशंकनीय = विश्वासपात्र है । तथा तुझसे बनावटी = कपटी अमात्यों द्वारा तेरी गुप्त मंत्रणा प्रकट तो नहीं कर दी जाती ?

25. क्या तू मित्र, उदासीन तथा शत्रुओं की चेष्टाओं को जानता है ? क्या तू यथाकाल सन्धि युद्ध का व्यवहार कर लेता है न ?

26. क्या तू मध्यम = दोनों पक्षों वेतन लेने वाले उदासीन के प्रति वृति = तुल्यता का व्यवहार तो करता है न ? क्या तू ने अपने समान ज्ञान वयोवृद्धों को जो शुद्ध = पवित्राचार व्यवहार वाले तथा संबोधन क्षम = जिनसे हृदय की बात कही जा सके अथवा जो सन्मार्ग बताने में समर्थ हों तथा जो कुलीन और तेरे अनुरागी हैं, हे वीर ! ऐसे मंत्री नियत किए हैं न ?

27. हे भारत ! राजा के विजय का मूल मन्त्र = गुप्त सुरक्षित विचार ही होता है ।

28. क्या सुरक्षित गुप्त मंत्रणा वाले, नीतिशास्त्र विलक्षण तेरे उन अमात्यों के द्वारा सुरक्षित राष्ट्र शत्रु से विलुप्त तो नहीं किया जाता ?

29. तू कहीं सर्वथा सोया तो नहीं रहता (अर्थात् असावधान तो नहीं रहता) समय पर जाग तो जाता है न? रात के पिछले पहरों में! अर्थ का विचार तो करता है न?

30. तू अकेला तो विचार नहीं करता? गुप्त मंत्रणा बहुतों के साथ तो नहीं करता? कहीं तेरा गुप्त रूप से मन्त्रित विचार राष्ट्र भर में तो नहीं फैल जाता?

31. क्या तू छोटे मूल वाले, किन्तु बड़े परिणाम वाले अर्थों = अर्थप्राप्ति के उपायों का विचार करके उनका शीघ्र अनुष्ठान आरम्भ कर देता है? उनमें विघ्न तो नहीं होने देता?

32. कहीं सभी कर्मान्त = कर्म परिणाम तुझ से परोक्ष = ओझल, अतःएव शंकास्पद तो नहीं हैं? अथवा सभी उत्तम रीति से सम्पन्न होते हैं? क्योंकि इसमें संसर्ग = सब पर दृष्टि रखना ही कारण है। इस श्लोक का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है - क्या तेरे सभी कर्मान्त = कार्यबद्ध प्रजावर्ग तुझ से परोक्ष = अज्ञात और विशंकित तो नहीं है? अथवा सब अत्यन्त प्रेमी हैं। क्योंकि प्रेम ही इसमें हेतु है।

33. वे तो कर्मान्त आप्त, लोकरहित क्रमागत कर्मचारियों द्वारा अनुष्ठित किये जाते हैं न? हे राजन्! तेरे समाप्त किये हुओं अथवा समाप्त होने वाले ही कर्मों को लोग जान पाते हैं न? हे वीर! कहीं तेरे किन्हीं असमाप्त कार्यों को तो लोग नहीं जान लेते?

34. क्या सर्वशास्त्र विशारद कारणिक शिक्षक ही कुमारों एवं प्रधान योधाओं को सर्व प्रकार से धर्म विषयक ज्ञान कराते हैं न?

35. क्या तू हज़ारों मूर्खों के बदले एक पण्डित ज्ञानी को खरीद लेता है न? क्योंकि अर्थ संकटों में पण्डित ही परम कल्याण कर सकता है?

36. क्योंकि एक भी मेधावी, शूर, संयमी, चतुर अमात्य राजा तथा राजपुत्र को बड़ी भारी लक्ष्मी प्राप्त करा सकता है ।

37. क्या तेरे सभी दुर्ग, धन, धान्य, आयुधों और जल तथा यंत्रों, शिल्पियों कारीगरों तथा धनुर्धरों से परिपूर्ण तो हैं ?

38. क्या तू परपक्ष के 18 तथा स्वपक्ष के 15 तीर्थों को एक दूसरे से अविज्ञात तीन-तीन गुप्तचरों के द्वारा जानता है ?

39. हे रिपुसूदन–शत्रु विनाशक ! क्या तू शत्रुओं से अज्ञात तथा सर्वदा प्रतिपन्न सावधान एवं नित्य उद्योगी होकर सब शत्रुओं को दृष्टि में रखता है ।

40. क्या अपने विनय सम्पन्न–सुशिक्षित, कुलीन, बहुश्रुत, महाविद्वान्, निन्दा तथा ईर्ष्या न करने वाले, अनुप्रष्टा शास्त्र विचार में प्रवीण पुरोहित का भी तुमने सत्कार किया है ?

41. क्या अग्नियों के लिए नियुक्त, विधि का जानने वाला, बुद्धिमान सरल स्वभाव आपके किये जा चुके होम तथा भविष्य में किये जाने वाले होम के विषय में सदा सूचना देता रहता है ।

42. क्या तेरा दैवज्ञ=ज्योतिषी भूगोल खगोल के विविध अंगों में पारंगत है ? अथवा शरीर के विविध अंगों की चेष्टा का भाव जान सकता है ?

43. क्या तूने मुख्यों को महत्वपूर्ण कार्यों में, मध्यमों में मध्यम कार्यों में तथा घटिया भृत्यों को घटिया कार्यों में नियुक्त कर रखा है ?

44. छल रहित, बाप-दादा के क्रम से आए हुए, शुचि श्रेष्ठ अमात्यों को श्रेष्ठ कार्यों में तो लगाता है न ?

45. कहीं तू उग्र दण्ड के द्वारा प्रजाओं को अतिमात्र उद्विग्न तो नहीं करता है ? हे भरतश्रेष्ठ ! तेरे मंत्री ही समस्त राष्ट्र का

अनुशासन करते हैं न?

46. कहीं याजक लोग तुझको कठोरता से करादि लेने वाला मान कर पतित की भाँति तिरस्कृत तो नहीं करते? जिस प्रकार काम के वशीभूत होकर इधर उधर घूमने वाले लम्पट पुरुष से स्त्रियाँ घृणा करती हैं।

47. क्या तेरा सेनानायक प्रसन्न, शूर, बुद्धिमान, धीर, शुचि, कुलीन, कुशल तथा अनुरक्त तो है न?

48. क्या तेरी सेना के प्रधान अधिकारी सर्वयुद्धों में प्रवीण, प्रौढ और छल रहित विक्रमशील तथा तुझ से सत्कार पाकर मानित है न?

49. क्या सेना को देने योग्य भत्ता तथा यथोचित वेतन उचित समय पर दे देते हो, विलम्ब तो नहीं करते हो न?

50. क्योंकि भत्ता तथा वेतन के कालातिक्रम से दरिद्रता के कारण ये सेवक राजा की ओर कुपित हो उसकी निन्दा करते हैं। इसे महान् अनर्थ माना जाता है।

51. क्या प्रधानमंत्री आदि सभी कुलीन तथा अनुरागी तो हैं न? क्या तेरे कार्यों के लिए सदा प्राण त्यागने में तत्पर रहते हैं?

52. कहीं संग्रामादि संबंधी अनेक कार्यों को कोई अकेला स्वार्थी, शासन का उल्लंघनकारी होकर यथेच्छ तो नहीं चलाता है।

53. क्या अपने पुरुषार्थ से कर्त्तव्य को उत्तमता से करने वाला पुरुष अधिक मान अथवा अधिक वेतन तथा भत्ता प्राप्त करता है न?

54. क्या तू विद्याविनीति, ज्ञानविशारद मनुष्यों का यथायोग्य और उनके गुण के अनुसार दान द्वारा सत्कार करता है न?

55. हे भरतश्रेष्ठ! क्या तू, तेरे लिए मृत्यु को प्राप्त हुए अथवा संकट को प्राप्त हुए मनुष्यों की पत्नियों का पालन भरण-पोषण करता है न?

56. हे पार्थ ! क्या तू भय के कारण अथवा क्षीण होने के कारण शरणागत शत्रु का तथा युद्ध में हारे हुए का पुत्र समान पालन करता है ?

57. हे राजन् ! क्या तू माता-पिता की भाँति समस्त राज्य के लिए सम तथा शंकारहित है ?

58. हे भरतश्रेष्ठ ! क्या तू शत्रु को व्यसनी विपद्ग्रस्त अथवा मद्यादि व्यसनों में फंसा सुन कर अपने और पराये त्रिविधबल की जांच करके वेग से चढ़ाई कर देता है ?

59. हे शत्रुदमन ! क्या तू पर्ष्णिमूल, व्यवसाय और पराजय हेतुओं और परपक्ष के अवश्य पराजित होने के हेतुओं को भली प्रकार जान कर समय आते ही, दृष्टि के परामर्श से विजययात्रा आरम्भ कर देता है ?

60. हे महाराज ! हे शत्रुतापक ! क्या सेना का वेतन अगाऊ देकर शत्रु के, राष्ट्र के सेनादि के मुख्य अधिकारियों को गुप्त रूप से यथायोग्य रत्न उत्तमोत्तम वस्तुएं देते हो ?

61. क्या सब से पूर्व अपने आपको जीतकर विशेष रूप से जितेन्द्रिय होकर, हे पार्थ ! प्रमादी व्यसनियों को जीतने की इच्छा किया करता है ?

62. शत्रुओं पर चढ़ाई करने के पूर्व क्या तेरे उत्तम रीति से अथवा उत्तम मनुष्यों के द्वारा अनुष्ठान किये हुए साम, दाम, दण्ड तथा भेद गुण विधिपूर्वक पहुँचते हैं न ?

63. हे राजन् ! तू अपने मूल स्वराज्य को दृढ़ करके ही शत्रुओं पर चढ़ाई करता है और उन्हें जीतने के लिए विक्रम करता है तथा जीतकर उनकी पूर्णतया रक्षा करता है न ।

64. क्या तेरी अष्टांग युक्त चार प्रकार के बल वाली सेना, सेना के मुखियों से सुशिक्षित हुई शत्रुओं को काटने में समर्थ है

न ?

65. हे महाराज ! हे परंतप ! क्या शत्रु के राष्ट्र में लव तथा मुष्टि को छोड़े बिना युद्ध में शत्रुओं का तू घात करता है ?

66. क्या अपने राष्ट्र के समान दूसरे राष्ट्रों में तेरे बहुत से अधिकारी कार्यों पर भली प्रकार अधिष्ठित हैं ? और एक दूसरे की रक्षा भी करते हैं न ?

67. क्या तेरे विश्वासपात्र जन तेरे खाने योग्य पदार्थों, शरीर को स्पर्श करने वाले वस्त्रादिकों तथा सुगंधित पदार्थों को तेरे लिए बचा रखते हैं न ?

68. क्या तेरे कल्याणभाजक भक्त, कोशागार, अन्न भंडार, वाहनशाला, द्वार तथा आय के साधनों की जांच पड़ताल करते रहते हैं ?

69. हे राजन् ! क्या तू आभ्यान्तरों तथा बाह्यों से सबसे पूर्व अपनी रक्षा करता है ? और अपनों से उनकी और उनकी एक दूसरे से रक्षा करता है ?

70. क्या तेरे परिचारक तेरे पहले पहर के मद्यादि व्यसनों से उत्पन्न होने वाले ह्रास को तो नहीं जानते ?

71. क्या तेरे आय के आधे, अथवा चौथाई अथवा तीन चौथाई भाग से तेरे राष्ट्र का व्यय पूरा हो जाता है ?

72. तू अपने संबंधियों, गुरुजी के वृद्ध होने पर, तेरे आश्रित व्यापारियों तथा शिल्पियों को दरिद्र होने पर धन-धान्य के द्वारा बार-बार कृपा करता है न ?

73. तेरे आय व्यय में नियुक्त सभी गणक तथा लेखक पहले पहर में प्रतिदिन आय तथा व्यय की सूचना देते हैं ।

74. तू अर्थों में प्रौढ़, हितैषी और अतएव तदनुकूल प्रियजनों को, पहले से दोष प्राप्त किए बिना कार्यों से च्युत तो नहीं कर देता है न ?

75. हे भारत ! तू पुरुषों को उत्तम, अधम तथा मध्यम समझकर तदनुरूप कार्यों पर उनको नियुक्त करता है न ?

76. हे राजन् ! कहीं लोभी, चोर अथवा वैरी या व्यवहार ज्ञानशून्य वा जिनका आचार पूर्व से अज्ञात है, ऐसे अधिकारी तो कार्यों पर नियुक्त नहीं है न ?

77. कहीं चोर, लालची, राजकुमार, स्त्री शक्ति अथवा तुम स्वयं ही राष्ट्र को पीड़ित तो नहीं करते हो ? क्या किसान तेरे राज्य में सन्तुष्ट हैं ?

78. क्या तेरे राष्ट्र में बड़े-बड़े और जल से पूर्ण तालाब योग्य स्थानों पर विशेष रूप से बने हुए हैं । खेती वर्षा मात्र के आधार पर तो होने वाली नहीं है ?

79. कहीं किसान का अन्न बीज नष्ट तो नहीं हो जाता, एक प्रतिशत मासिक वृद्धि पर कृपायुक्त ऋण देता है न ?

80. हे प्रिय ! क्या तेरे राष्ट्र में सज्जन मनुष्य वार्ता का अनुष्ठान भली प्रकार करते हैं ? क्योंकि हे तात ! वार्ता पर आश्रित यह संसार सुख सम्पन्न रहता है ।

81. हे राजन् ! क्या तेरे जनपद में पांच-पांच शूर, बुद्धिसम्पन्न और सुनिपुण अधिकारी मिलकर प्रजा का कल्याण करते हैं न ?

82. राष्ट्र की सुरक्षा के लिये ग्रामों को नगरवत् कर रखा है न ? और ग्रामों की भाँति सीमा प्रदेशों को तथा वे सब तेरे अर्पण हुए हैं न ?

83. तेरे देश में सब-सम्पन्न दशा वाले, दुर्भिक्षादि से पीड़ित दशा वाले चोरों के विनाशक नागरिक तेरी सेना से अनुगत हो कर विचरते हैं न ?

84. स्त्रियों की सांत्वना करता है न ? उनको सुरक्षित रखता है न ? उन पर अधिक विश्वास तो नहीं करता है न ? और उनके आगे गुप्त बातें तो नहीं कहता ?

85. क्या तू अनर्थकारी बातें सुनकर और उनका अर्थ विचार कर आनन्द मनाता हुआ अन्तःपुर में तो नहीं सो जाता ?

86. हे राजन् ! क्या तू रात के पहले दो पहर सोकर पिछले पहर में उठकर धर्म तथा अर्थ का विचार करता है न ?

87. हे पाण्डव ! तू काल को पहचानने वाले मन्त्रियों के साथ समय पर उठकर, सुभूषित होकर मनुष्यों को नित्य चाहता है, अर्थात् उनके दुःख सुख को जानना चाहता है ।

88 हे शत्रुदमन ! क्या रक्तवस्त्रधारी कृपाणपाणि, उत्तमता से विभूषित रक्षक तेरी रक्षा के लिए चारों ओर से तेरी सेवा में उपस्थित रहते हैं न ?

89. क्या तू दण्डयोग्य अपराधियों पर यम-मृत्यु के समान तथा पूज्यों के प्रति हे राजन् विनीत के समान तथा प्रियों एवं अप्रियों के प्रति परीक्षा करके ठीक-ठीक व्यवहार करता है न ?

90. क्या, हे पार्थ ! तू शारीरिक कष्ट को औषधों अथवा नियम से तथा मानसिक कष्ट को वृद्धों की सेवा आदि के द्वारा सदा दूर करता रहता है न ?

91. क्या अष्टांग चिकित्सा में कुशल वैद्य तेरे मित्र एवं प्रेमी होकर सदा तेरे शरीर का हित करते हैं न ?

92. क्या तू उपस्थित हुए अर्थी-प्रत्यर्थियों को तो हे राजन् ! किसी प्रकार लोभ से वा मोह से अथवा मान से तो नहीं देखता है न ?

93. क्या तू कहीं लोभ से वा मोह से, विश्वास से अथवा प्रीति से आश्रित मनुष्यों की वृत्ति को तो नहीं रोकता है न ?

94. क्या कहीं जो तेरे राष्ट्र में बसने वाले हैं वे नागरिक शत्रुओं से किसी प्रकार खरीदे जाकर इकट्ठे मिलकर तेरा विरोध तो नहीं करते हैं न ?

95. कहीं तेरी शक्ति से परिपीड़ित कोई दुर्बल शत्रु मंत्र तथा बल दोनों के द्वारा बलवान तो नहीं हो गया?

96. कहीं प्रधानतः दान मान से वशीकृत सभी राजा तेरे अनुरागी होकर तेरे कार्यों में अपने प्राणों को त्यागते हैं न?

97. क्या सब विद्याओं के विषय में ब्राह्मणों तथा साधुओं के लिए गुणानुसारिणी तेरी पूजा प्रवृत्त होती है? क्या तू इनकी स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करने वाली परम कल्याणकारिणी दक्षिणायें देता है न?

98. क्या वेदमूलक तथा पूर्वजनों से आचरित धर्म में तू यत्नशील होकर उस कर्म को वैसा करने का व्यवहार भी करता है न?

99. क्या तेरे घर में गुणी ब्राह्मण गुणयुक्त स्वादु अन्नों को तेरे समक्ष खाते हैं और दक्षिणा पाते हैं न?

100. क्या एकाग्रचित और आत्मन्वी होकर सर्व प्रकार यज्ञों, वाजपेयों तथा पुण्डरीकों को पूर्णतया करने का यत्न करता है न?

101. क्या तू दृढ़ संबंधियों, गुरुओं, निस्वार्थ विद्वानों, तपस्वियों, कल्याणकारी वृक्षों तथा ब्राह्मणों को पूजता है न?

102. हे अनय (पापरहित!) कहीं तू क्रोध अथवा शोक तो उत्पन्न नहीं कर देता है और हाथ में पवित्र वस्तुएं लिये पुरोहित तेरे पहलू में स्वस्त्ययन करता है न?

103. क्या तेरी आयु बढ़ाने वाली तथा यश देने वाली और धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि दिलाने वाली बुद्धि तथा वृत्ति है न?

104. बुद्धि से व्यवहार करने वाले राजा का राष्ट्र नष्ट नहीं होता है, वह राजा पृथिवी को जीत कर अत्यन्त सुख से बढ़ता है।

105. कहीं कोई पवित्रात्मा आर्य शास्त्र रहस्य के न जानने वाले राजकर्मचारियों द्वारा चोर कर्म में फंसा कर, निर्दोष ही लोभ

के कारण तो नहीं मार दिया जाता?

106. स्वभाव से दुष्ट, दुष्ट कर्म करने वाले, चोरी की खोज करने वालों के द्वारा चोरी के द्रव्यसहित पकड़ा गया चोर, हे नरश्रेष्ठ! कहीं द्रव्य लोभ के निमित्त छोड़ तो नहीं दिया जाता।

107. कहीं तेरे मंत्री लोगों के बहकावे से धनी अथवा दरिद्र के शीघ्र उत्पन्न धनों को मिथ्या तो नहीं समझते हैं?

108. नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का संग न करना, आलस्य, पंचवृत्तिता सदाचार साहित्य अथवा खुला स्वभाव।

109. केवल धनों का ही विचार करना, अर्थ ज्ञान शून्य के साथ विचार करना, निश्चित किये कार्यों का न करना।

110. गुप्त मंत्रणा की रक्षा न करना, मंगलादि शुभ कार्यों का न करना और सब ओर से प्रत्युत्थान (राज्य कार्य की उपेक्षा)।

111. तेरे वेद तो सफल हैं न? तेरा धन तो सफल है। तेरी पत्नी भी सफल है। तेरा ज्ञान तो सफल है।

112. युधिष्ठिर ने पूछा—वेद कैसे सफल होते हैं? धन कैसे सफल होता है? पत्नी कैसे सफल होती है? और ज्ञान कैसे सफल होता है?

113. नारद ने उत्तर दिया—वेदों के फल अग्निहोत्र हैं। धन का फल दान तथा सद्पयोग है। स्त्री का फल प्रीति उत्तम तथा सन्तान है। ज्ञान का फल शील एवं आचार है।

114. वैशम्पायन ने कहा—इतना कह कर महातपस्वी नारद मुनि ने इसके पश्चात् धर्मात्मा युधिष्ठिर से यह पूछा।

115. नारद ने पूछा – क्या दूर देश से लाभ उठाने के लिए आये हुए व्यापारियों से शुल्कोपाजीवियों (चुंगी आदि पर निर्वाह करने वालों) को यथायोग्य शुल्क दिलवाया जाता है।

116. क्या हे राजन्! तेरे नगर वा राष्ट्र में उन लोगों का मान होता है न जो क्रय विक्रय योग्य पदार्थों को लाते हैं?

117. हे तात! क्या तुम वृद्धों की धर्म-अर्थयुक्त बातों को सुनते हो न और धर्म और अर्थ के यथार्थ वेत्ता अर्थज्ञों की बात भी सुनते हो न?

118. कृषि से उत्पन्न होने वाले पुष्पफल तथा गौओं से उत्पन्न होने वाले पुष्पफल अर्थात् अन्न और घृत ब्राह्मणों को मूल्य के बिना दिये जाते हैं।

119. क्या सभी शिल्पियों को सर्वदा वेतन जो कुछ भी भली प्रकार नियत हो चुका है तथा पदार्थ निर्माण सामग्री कम से कम चार मास के लिए पर्याप्त हो देते हो न?

120. महाराज! क्या किसी के किए उपकार को जानते मानते हो, अर्थात् कृतज्ञ तो हो न? उपकार करने वाले की प्रशंसा करते हो न? और सज्जनों के बीच में आदर करते हुए उसका सत्कार करते हो न?

121. हे भरतर्षभ! क्या तुम हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र आदि सब सूत्रों को हे महाराज! समझते हो, सीखे हो?

122. हे भरतश्रेष्ठ! क्या तेरे घर में धनुर्वेद के सूत्र तथा नगरहितकारी यंत्रसूत्र का अभ्यास किया जाता है।

123. हे अनघ (पापरहित)! क्या अस्त्र तथा ब्रह्मास्त्र और शत्रुनाशक सभी विषयोग तुझे विदित हैं न?

124. क्या तू अपने सारे राष्ट्र की अग्नि भय से, हिंसक जन्तुओं के भय से, तथा रोग भय एवं रोग जन्तु भय से पूर्णतया रक्षा करता है न?

125. हे धर्मज्ञ! क्या तू अंधों, गूंगों, पंगुओं, अंगहीनों, बंधुहीनों तथा संन्यासियों की, मित्र की भाँति पालना करता है न?

126. हे महाराज ! क्या तू ने निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, मृदुता तथा दीघ्रसूत्रिता इन छह दोषों की ओर पीठ कर रखी है न ?

127. इसके पश्चात् कुरुश्रेष्ठ महात्मा राजा ने उस ब्राह्मणश्रेष्ठ की बातें सुनकर प्रणाम करके और पैरों में अभिवादन करके प्रसन्न होकर देवरूप नारद को कहा ।

128. युधिष्ठिर ने कहा– महाराज ! जैसा आपने कहा है वैसा ही करूँगा । इससे मेरी बुद्धि और अधिक बढ़ी है । और राजा ने किया भी वैसा ही । इससे राजा ने सागराम्बरा पृथिवी प्राप्त की ।

129. नारद ने कहा – जो राजा चातुर्वर्ण्य की रक्षा के लिए ऐसा व्यवहार करता है, वह इस लोक में अत्यंत सुखपूर्वक विचर कर आत्मराज्य प्राप्त करता है ।

–महाभारत (सभापर्व - अध्याय 5)

3. विदुरनीति

अध्याय-1

नींद के न आने में कारण

1. जो व्यक्ति कामी है, चोर है, जिसका सर्वस्व हर लिया गया है और जिस असहाय दुर्बल पुरुष पर बलवान् का आक्रमण होने वाला है– इन चार तरह के मनुष्यों को नींद नहीं आती है ।

पंडित के लक्षण

2. आत्मज्ञान, कर्मों का प्रारम्भ, सहनशीलता तथा धार्मिकता जिसे लक्ष्य से नीचे नहीं गिराते । उसे पण्डित कहते हैं ।
3. जो व्यक्ति प्रशंसित कार्यों को करता है तथा निन्दित कार्यों का परित्याग कर देता है, जो नास्तिक नहीं, प्रत्युत श्रद्धावाला है, वही पण्डित कहलाता है ।
4. क्रोध, हर्ष, अभिमान, लज्जा, अनम्रता, अपने को सम्मान योग्य समझना और धन लोलुपता जिसे पुरुषार्थ से भ्रष्ट नहीं करते, वह मनुष्य पण्डित कहलाता है ।
5. जिस व्यक्ति के (विचार हुए) कार्य को उसके शत्रु कार्य से पूर्व नहीं जान पाते, अपितु कार्य किए जाने के बाद ही जान पाते हैं, उसको पण्डित कहते हैं ।
6. वही पण्डित है, जिसके कार्य में सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग, संपत्ति और निर्धनता विघ्न नहीं डाल सकते ।
7. जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म और अर्थ का अनुसरण करती है तथा जो कामना के अनुसार धन को प्राप्त करता है वह पण्डित कहलाता है ।
8. जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करने की इच्छा करते और शक्ति के अनुसार ही कार्य करते हैं, जो किसी पदार्थ का तिरस्कार नहीं करते, वे मनुष्य पण्डित बुद्धिवाले होते हैं ।

9. पण्डित की यह मुख्य पहचान है कि वह सुनता तो देर तक है, पर शीघ्र समझ लेता है, स्वार्थभाव का परित्याग करके समझे हुए को आचरण में लाता है, दूसरे के संबंध में बिना पूछे कुछ कहता नहीं ।

10. पण्डित बुद्धि वाले मनुष्य न प्राप्त होने योग्य पदार्थ की अभिलाषा और नष्ट हुए पदार्थ के लिए शोक नहीं करते और न ही आपत्तियों में मोह को प्राप्त होते हैं ।

11. जो व्यक्ति निश्चय करके कामों का आरम्भ करता है, और काम को लटकाए नहीं रखता, अर्थात् समाप्त कर देता है । समय को व्यर्थ नहीं गंवाता, जितेन्द्रिय है, वह पण्डित कहलाता है ।

12. हे भरतकुल श्रेष्ठ, पण्डित जन श्रेष्ठकर्म में प्रवृत्त होते हैं । वे सदा सुख देने वाले कर्मों को करते हैं । किसी की भलाई पर ईर्ष्या नहीं करते ।

13. जो आत्म-सम्मान से प्रसन्न नहीं होता और तिरस्कार से दुःखी नहीं होता । गंगा के अगाध जल की भाँति कभी क्षुब्ध नहीं होता, वह पण्डित कहलाता है ।

14. सारे प्राणियों के तत्व का ज्ञाता तथा सब कार्यों की सम्पादनविधि में कुशल और मनुष्य-सम्बन्धी उपायों को जानने वाला व्यक्ति पण्डित कहलाता है ।

15. वक्ता, अपूर्व कथन करने वाला, तर्कनिपुण, अनुभूतियुक्त और तत्काल ही शास्त्र का प्रवक्ता पण्डित कहलाता है ।

16. जिसका पढ़ा-सुना बुद्धि के अनुसार है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के अनुसार है, जिसने आर्यमर्यादा का पालन किया है वही पण्डित कहलाता है ।

मूर्ख के लक्षण

17. जो पढ़ा-लिखा नहीं पर अभिमानी है, उच्च आकांक्षाओं वाला पर दरिद्र तथा पुरुषार्थ के बिना ही अर्थों को प्राप्त करना चाहता है उसे मूर्ख कहते हैं ।

18. जो न चाहने वालों को चाहता है और चाहने वालों को छोड़ देता है बलवानों से शत्रुता रखता है वह मूढ हृदय है ।

19. जो प्रेम के अपात्र को मित्र बनाता मित्र से द्वेष करता तथा उसकी हानि करता है और नीच कर्मों का आरम्भ करता है । उसे मूढबुद्धि कहते हैं ।

20. जो एक काम में बहुत से कामों को घुसेड़ कर उन्हें फैला देता है और सभी जगह सन्देह करता है तथा जल्दी के कार्य में देर लगाता है उसे मूर्ख कहते हैं ।

21. जो बिना बुलाए सब कहीं चला जाए बिना पूछे बहुत बात करने लगे अविश्वासी मनुष्यों पर विश्वास करे वह नराधम मूर्ख कहलाता है ।

22. जो स्वयं दोषी होता हुआ दूसरों पर कीचड़ उछालता है और सामर्थ्यरहित हुआ क्रोध करता है, वह मनुष्य अत्यन्त मूढ़ है ।

23. जो अपने बल को न समझ कर धर्म और अर्थ से रहित होकर न प्राप्त होने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति को कर्म के बिना ही चाहता है, वह इस संसार में मूर्ख कहलाता है ।

पण्डित के लक्षण

24. बहुत बड़े अर्थ को विद्या को और ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी जो उद्धत (अभिमानी) नहीं होता वह पण्डित कहलाता है ।

निर्दय का लक्षण

25. जो अकेला ही सुस्वादु और उत्तम पदार्थों को खाता और सुन्दर वस्त्र पहनता है, भृत्यों को बाँट कर नहीं देता, उससे ज्यादा निर्दय कौन हो सकता है ।

बुद्धिमान की प्रशंसा

26. धनुषधारी के हाथ से छूटा हुआ बाण एक को ही मार सकता है और चूक होने पर नहीं भी मार पाता, परन्तु बुद्धिमान की बुद्धि राजा सहित राष्ट्र को समाप्त कर देती है ।

मंत्र भेद का दोष

27. विष का रस एक मनुष्य को ही मारता है, और शस्त्र से भी एक ही व्यक्ति मारा जाता है, पर मंत्र-भेद राष्ट्र और प्रजा के साथ राजा को भी समाप्त कर देता है ।

सदाचार

28. बुद्धिमान पुरुष स्वादिष्ट पदार्थों को कभी अकेला न खाये अर्थात् सब को बाँट कर खाए । कभी अकेला ही समस्याओं पर विचार न करे (अर्थात् सुहृज्जनों के साथ मिलकर विचार करें) तथा कभी अकेला ही यात्रा न करे (यात्रा के समय किसी अन्य को भी साथ ले ले) और सोते हुए पुरुषों में अकेला कभी न जागे ।

क्षमा

29. क्षमादानों का यही एक बड़ा भारी दोष है, जिसके बराबर दूसरा नहीं हो सकता । (वह दोष यह है कि) क्षमा से युक्त पुरुष को दूसरे मनुष्य असमर्थ समझ लेते हैं ।

30. उपर्युक्त श्लोक में वर्णित वह क्षमा मनुष्य का दोष नहीं समझना चाहिए, अपितु वह क्षमा उसका बहुत बड़ा बल है । बलहीनों के लिए क्षमा गुण है, और बलवानों के लिए वह क्षमा भूषण है ।

31. परम श्रेय धर्म है; उत्तम शांति क्षमा है; परम तृप्ति विद्या है और सुख देने वाली केवल एक अहिंसा है ।

दो व्यक्ति मृत्यु के वशवर्ती

32. शत्रुओं को रोकने में असमर्थ क्षत्रिय को और एक ही स्थान पर बैठने वाले (अर्थात् स्थान-स्थान पर घूमकर प्रचार न करने वाले) ब्राह्मण को भूमि ऐसे खा जाती है, जैसे सांप बिल में रहने वाले प्राणियों को खा जाता है ।

दो श्रेष्ठ कर्म

33. किसी के प्रति कठोर वचन न कहना और अपात्रों की पूजा न करना—इन दो कामों को करता हुआ पुरुष इस लोक में सुशोभित होता है ।

दो व्यक्ति कण्टकरूप

34. दरिद्र होकर बहुत-सी कामना करना और बलहीन हो क्रोध करना—ये दोनों काँटे बड़े तीक्ष्ण और शरीर का शोषण करने वाले हैं ।

दो अभागे

35. बिना उद्योग धंधे के निष्क्रिय (निकम्मा) गृहस्थी और सांसारिकता में फँसा हुआ संन्यासी – ये दोनों विपरीत धर्म के कारण शोभा को प्राप्त नहीं होते ।

धन के दो बुरे उपयोग

36. न्याय से कमाए हुए धन के दो दुरुपयोग हैं । कुपात्र को दान देना, तथा सुपात्र को न देना ।

दो मारने के योग्य

37. जो धनवान दानी नहीं तथा जो निर्धन (ग़रीब) होकर तपस्वी नहीं—इन दोनों के गले में एक मजबूत पत्थर बांधकर अगाध जल में फेंक देना चाहिए ।

तीन दोष

38. दूसरे के धन का अपहरण, परस्त्री का संसर्ग तथा सच्चे मित्र का परित्याग—ये तीन दोष मनुष्य का नाश करने वाले होते हैं ।

नरक के तीन द्वार

39. आत्मा का नाश करने वाले तीन नरक के द्वार हैं—काम (वासना), क्रोध और लोभ । इसलिए इन तीनों का परित्याग कर देना चाहिए ।

राजा के लिए छोड़ने योग्य चार कर्म

40. बलवान राजा के लिए भी चार बातें त्यागने योग्य कही हैं, बुद्धिमान को उन्हें जानना आवश्यक है– वह कभी भी मूर्खों के साथ, देर में काम निपटाने वालों के साथ जल्दबाजों के साथ और भाटों के साथ परामर्श न करे ।

भय के चार कारण

41. चार श्रेष्ठ कर्म जो भय को दूर करने वाले हैं यदि ठीक-ठीक न किए जाएँ, तो बड़े भारी भय का कारण बन जाते हैं । वे कर्म हैं–अभिमानपूर्वक किया हुआ अग्निहोत्र, मानयुक्त मौन, मान से पढ़ना, मानपूर्वक किया हुआ यज्ञ ।

पाँच अग्नियाँ

42. हे भरतकुलश्रेष्ठ, पिता, माता, अग्नि, अपना आत्मतत्व और गुरु – इन पाँच अग्नियों का सेवन मनुष्य को बड़े यत्न से करना चाहिए ।

इन्द्रिय के दोष

43. पांच इन्द्रियों वाले मनुष्य के यदि एक इन्द्रिय में भी छिद्र (दोष) है, तो जीर्ण चमड़े के बर्तन से जैसे पानी बह जाता है, उसी प्रकार उसका ज्ञान भी उसी इन्द्रियदोष से नष्ट हो जाता है ।

छः दोष

44. ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष को, निद्रा, प्रमाद, भय, क्रोध, आलस्य और काम लटकाना– ये छः दोष छोड़ देने चाहिएं ।

परित्याग के योग्य छः व्यक्ति

45. अध्यापन के अयोग्य आचार्य, अनपढ़ पुरोहित, रक्षा न करने वाला राजा, कड़वे बोल बोलने वाली स्त्री, गांव में रहने की इच्छा वाला ग्वाला और वन जाने की इच्छा वाला नाई–इन छः व्यक्तियों को उसी प्रकार छोड़ दें, जैसे समुद्र में जाने के लिए टूटी नाव को छोड़ दिया जाता है ।

छः गुण

46. सत्य, दान, अनालस्य, अनसूया (ईर्ष्या न करना) क्षमा और धैर्य – इन छः गुणों का त्याग मनुष्य को कभी नहीं करना चाहिए ।

छः पदार्थों की उपेक्षा में दोष

47. गाय, सेवा, खेती, भार्या, विद्या, और नीच के साथ संगति ये पदार्थ क्षण भर भी ध्यान न देने से नष्ट हो जाते हैं ।

छः सुख

48. हे राजन्! आरोग्य, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, पण्डितों का संग, अपने पुरुषार्थ से जीविका कमाना, निर्भय रहना–ये इस संसार के छः सुख हैं ।

सदा दुःखी

49. ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शंकित रहने वाला और दूसरे के भरोसे जीने वाला–ये छः नित्य ही दुःखी रहते हैं ।

छः जीवलोक के सुख

50. धन की प्राप्ति, हमेशा स्वस्थ रहना, प्रिय बोलने वाली तथा प्यारी स्त्री, आज्ञावर्ती पुत्र, धन देने वाली विद्या– ये जीवलोक के छः सुख हैं ।

छः व्यक्तियों के छः जीविका के साधन

51. असावधान पुरुषों से चोर जीते हैं, रोगियों से वैद्य, कामी पुरुषों से स्त्रियाँ, यजमानों से पुरोहित, झगड़ा करने वालों से राजा और मूर्खों से पण्डित – ये छः प्रकार के लोग छः प्रकार के लोगों से अपनी-अपनी जीविका चलाते हैं । इनसे भिन्न सातवां नहीं है ।

राजा के सात दोष

52. स्त्री, जुआ, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, बहुत कठोर दण्ड देना, अर्थदोष अर्थात् धन का अपव्यय– इन सात दोषों को

राजा छोड़ दे । अन्यथा इन दोषों से सुस्थिर राजा का भी नाश हो जाता है ।

आठ गुण

53. बुद्धि, उत्तम कुल, जितेन्द्रियता, विद्या, पराक्रम, नियमित बोलना, शक्ति के अनुसार दान देना, उपकारियों का आभार मानना—ये आठ गुण पुरुष को यशस्वी बनाते हैं ।

धर्म विमुख दस व्यक्ति

54. नशे में मदमस्त, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, डरा हुआ और कामी— ये दस व्यक्ति धर्म को नहीं जानते हैं । इसलिए बुद्धिमान पुरुष को इनसे व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए ।

धीर का लक्षण

55. जो स्वयं निर्बल होता हुआ किसी का अपमान नहीं करता, ध्यानपूर्वक जो शत्रु से व्यवहार करता है, बलवानों से जो लड़ाई नहीं छेड़ता, समय आने पर जो विक्रम का प्रदर्शन करता है, वही राजा धीर है ।

56. जो धुरंधर (जीवन के रथ को ठीक तरह चलाने वाला) आपत्ति के आ पड़ने पर दुःखी नहीं होता है, सावधान होकर उद्योग करता है तथा जो समय पर कठिनाई को भी सह लेता है वह महात्मा शत्रुओं को जीत लेता है ।

आर्य के लक्षण

57. जो उद्वेग से धर्म-अर्थ-काम सम्बन्धी कार्यों का आरम्भ नहीं करता । पूछे जाने पर जो तथ्य ही बतलाया है, मित्र के साथ विवाद नहीं करता और सम्मानित न होने पर भी क्रुद्ध नहीं होता अर्थात् विवेक नहीं खो बैठता, वही पण्डित है ।

58. जो व्यक्ति शांत हुए वैर को फिर नहीं जगाता अभिमान नहीं करता और न ही अति दीन बनता है मैं तो हीन दशा में हूँ ऐसा सोच कर बुरा काम भी नहीं करता उस व्यक्ति को बुद्धिमान आर्य स्वभाव वाला कहते हैं ।

59. जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता तथा दूसरों के दुःख को देखकर हर्ष नहीं करता। दान देकर बाद में जो पश्चाताप नहीं करता है। हे सत्पुरुष, वही आर्य स्वभाव वाला कहलाता है।

60. जो अपने समान गुण वालों से विवाह करता है अपने से नीच गुण वालों के साथ नहीं तथा समान व्यक्तियों के साथ ही मित्रता का व्यवहार और वार्तालाप करता है। प्रत्येक काम में गुणों में बढ़े-चढ़े मनुष्यों को प्रमुखता देता है उसकी नीति ठीक व्यवहृत होती है।

महात्माओं के लक्षण

61. जो पुरुष अपने आश्रित व्यक्तियों में अधिक पदार्थ बाँटकर स्वयं नियमित खाता है, अधिक काम करके थोड़ा सोता है और मांगने पर शत्रुओं को भी देने योग्य वस्तु देता है, अनर्थ (बुराइयां) उस महात्मा का परित्याग कर देती हैं।

62. जिसके चाहे हुए और बिगड़े हुए काम को अन्य नहीं जान पाते हैं, मंत्र के गुप्त रहने से और उसके यथोचित उपयोग से उसका कोई भी काम किंचिन्मात्र भी विकृत नहीं होता। वह महात्मा है।

अध्याय-2

बिना पूछे कहाँ बोलना उचित है

63. मनुष्य को उचित है कि वह जिसका अहित नहीं चाहता उसके शुभ-अशुभ प्रिय और अप्रिय सब प्रकार की बातों को उसे कह दे।

परित्याज्य कर्म

64. हे भारत! जिन कार्यों की मिथ्या और विपरीत उपायों से सिद्धि होती हो। उनमें (उनकी सिद्धि में) अपना मन मत लगाइए।

कर्म-असिद्धि में ग्लानि मत करो

65. और इसके साथ ही अनेक सद् उपायों और ठीक विधि से किए हुए कार्य की यदि सिद्धि नहीं होती तो बुद्धिमान को अपना मन दुःखी नहीं करना चाहिए ।

बिना सोचे कार्य न करें

66. जिन कर्मों के साथ गौणरूप से और कर्म जुड़े (अनुबन्ध) हुए हैं, उन कर्मों का सदा ध्यान रखना चाहिए । कर्मों को विचार कर धीरता से करना चाहिए, सहसा नहीं ।

67. कर्मों के सहयोग से होने वाले अन्य कर्मों, कर्मों के परिणामों और अपने उत्कर्ष का ध्यान करके ही धीर पुरुष को कर्म करने चाहिएं अथवा उनका परित्याग करना चाहिए ।

अविनय का दोष

68. राज्य तो प्राप्त हो ही गया है इस प्रकार सोच कर कभी भी राजा को अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए । क्योंकि अविनयशीलता लक्ष्मी को उसी प्रकार हर लेती है जैसे बुढ़ापा सुन्दरता को ।

खाद्य पदार्थ

69. जो पदार्थ खाने के योग्य है, खाने के बाद जो आसानी से पच जाता है और पच जाने पर परिणाम में हितकारी होता है । स्वास्थ्य चाहने वाले पुरुष को ऐसा पदार्थ ही खाना चाहिए ।

परिणामी फल हितकारक है

70. जो मनुष्य वृक्ष के कच्चे फलों को तोड़ लेता है वह उन फलों के रस को नहीं पा सकता और और बीज तो उसे मिलेंगे ही नहीं ।

71. परन्तु जो व्यक्ति समय पर पके हुए फल को वृक्ष से लेता है, वह उस फल से रस को प्राप्त कर लेता है और बीज से वह पुनः फल को भी पा सकता है ।

कर-संग्रहण का प्रकार

72. जैसे भौंरा फूलों की हानि न करता हुआ उन फूलों से मधु रूपी रस को ले लेता है, उसी प्रकार बुद्धिमान राजा को भी प्रजा जनों को कष्ट न देते हुए धन प्राप्त करना चाहिए ।

73. माली फूल-फूल को चुन लेता है परन्तु पौधों को जड़ से नहीं उखाड़ता उसी प्रकार राजा को भी प्रजा से अर्थ-प्राप्ति करनी चाहिए उन्हें पीड़ित नहीं करना चाहिए । कोयला बनाने वाले के समान उसे व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो कि वृक्ष को मूल से ही काट लेता है ।

अयोग्य स्वामी

74. जिसकी प्रसन्नता से प्रजा को कोई लाभ नहीं होता और क्रुद्ध होने पर कोई हानि नहीं होती । ऐसे राजा को प्रजा उसी प्रकार नहीं चाहती जैसे नपुंसक पति को स्त्रियाँ ।

प्रजा के अनुराग का पात्र राजा

75. जो राजा प्रजाओं पर इस प्रकार अनुग्रह दृष्टि रखता है, मानो उन्हें स्नेह की आँखों से पीना चाहता है । कृपा के विशेष कार्य न करने पर भी प्रजाएँ उसे प्रेम करती हैं ।

76. जो राजा दृष्टि, मन, वाणी और कर्म इन चार प्रकारों से स्वराष्ट्र को (प्रजा को) प्रसन्न करता है, उस राजा को प्रजा भी प्रसन्न करती है ।

77. जिस राजा से प्रजाएँ शिकारी से हिरन के समान डरती हैं वह राजा समुद्रपर्यन्त पृथिवी पर शासन करता हुआ भी राज्य से हीन हो जाता है ।

78. जो राजा उस धर्म का आचरण करता है जिसको कि सदा सज्जन पुरुष अपने आचरण में लाते रहे हैं । उस राजा का राज्य सदा सुख बढ़ाने वाला ऐश्वर्य से पूर्ण होकर बुद्धि को प्राप्त होता है ।

79. जो राजा धर्म का परित्याग करके अधर्म का आचरण करता है उसका राज्य अग्नि में रखे हुए चमड़े की भाँति सिकुड़ जाता है ।

80. राजा जितना यत्न पर-राष्ट्र के विमर्दन में करता है उसे उतना ही यत्न अपने राज्य के पालन में भी करना चाहिए ।

81. जैसे मिट्टी में से सोना निकाला जाता है उसी प्रकार बुद्धिमान राजा को असम्बद्ध बोलने वाले, पागल तथा बहुभाषी बालक से भी तत्व ग्रहण कर लेना चाहिए ।

उत्तम वचनों को चुनें

82. बुद्धिमान को उचित है कि जैसे कोई शिलवृत्ति से जीने वाला मनुष्य खेत में पड़े हुए धान्य को कण-कण करके चुनता है । ऐसे ही जहाँ कहीं से भी उत्तम वचन तथा उत्तम कर्म प्राप्त हो ग्रहण कर लेना चाहिए ।

देखने के साधन

83. पशु सूंघने से, ब्राह्मण ज्ञान से और राजा गुप्तचरों से देखते हैं । परन्तु सामान्य जन आँखों से ही देखते हैं ।

सच्चे बन्धु

84. पशुओं के रक्षक (बन्धु) मेघ हैं, राजा के बंधु मंत्री, स्त्रियों के बंधु (रक्षक) पति तथा ब्राह्मणों का बंधु ज्ञान है ।

रक्षा के साधन

85. धर्म की रक्षा सत्य से होती है, अभ्यास से विद्या की, बुद्धि से रूप की और सदाचार से कुल की रक्षा होती है ।

आचार की प्रशंसा

86. आचरण-हीन का कुल प्रमाण के योग्य नहीं होता । छोटे कुल में भी उत्पन्न मनुष्यों की सच्चरित्रता ही उनको विशिष्ट बना देती है ।

ईर्ष्यालु

87. जो दूसरों के धन, रूप, शक्ति, सुख, सौभाग्य और आदर को देखकर जलता है, उसका यह रोग असाध्य है अर्थात् इस रोग की कोई औषध नहीं है ।

तीन मद

88. विद्या-मद, धन-मद और बान्धवों का मद—ये तीनों मूर्खों के लिए बहुत बड़े अभिमान (मद) के कारण है । पर सज्जनों के लिए ये तीनों ही वश में करने के योग्य हैं ।

शील का महत्व

89. सुन्दर वस्त्रधारी केवल सभा को जीतता है, मीठे पदार्थ के खाने की आशा को केवल गाय रखने वाला जीतता है, सवारी वाला केवल मार्ग को जीतता है । पर शीलवान् पुरुष सभी को जीत लेता है ।

90. पुरुष में शील (सत्स्वभाव) की ही प्रधानता है । जिसका शील नष्ट हो जाता है । उससे धन, बन्धु और जीवन का भी कोई प्रयोजन नहीं ।

भूख स्वाद को पैदा करती है

91. दरिद्र सदा स्वादु अन्न खाते हैं क्योंकि भूख उनके अन्न को स्वादु बना देती है । परन्तु वह भूख धनिकों के लिए दुर्लभ होती है ।

दुःख का कारण

92. विषयों में रमण करने वाली अविजित इन्द्रियाँ मनुष्यों को उसी प्रकार तपाती (दुःख देती) हैं, जैसे नक्षत्रों को ग्रह ।

93. आत्मपतन कराने वाले स्वाभाविक काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से पराभूत पुरुष की विपत्तियाँ उसी प्रकार बढ़ती हैं, जैसे शुक्लपक्ष (पूर्णमासी) में चन्द्र ।

अपनी विजय

94. जो राजा अपने मन को वश में किए बिना ही अमात्य वर्ग को जीतना चाहता है तथा अमात्यवर्ग को जीते बिना शत्रुओं को जीतना चाहता है वह विवश हुआ सिद्धि से च्युत हो जाता है ।

इन्द्रियों का संयमी

95. पुरुष का शरीर एक रथ के समान है । इसमें आत्मा रथ को चलाने वाला और इन्द्रियां उस रथ के घोड़े हैं । जागरूक हुआ धीर पुरुष सुखपूर्वक संसार यात्रा कर लेता है जैसे कुशल रथी वश में किए हुए सधे घोड़ों वाले रथ से अपनी यात्रा पूरी कर लेता है ।

96. इन्द्रियों को न जीतने वाला मूर्ख, अनर्थ में अर्थ को, और अर्थ में अनर्थ को तथा दुःख में सुख को और सुख में दुःख को देखता है ।

97. जो मनुष्य धर्म तथा अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वश में हो जाता है उसके लक्ष्मी, प्राण और स्त्री सभी नष्ट हो जाते हैं ।

98. जिसने स्वयं ही अपने-आप को जीत लिया, वह अपना बन्धु स्वयं है । आत्मा ही गाढ़ बन्धु है और आत्मा ही सुदृढ़ शत्रु है ।

99. जो अन्तःकरण में उद्‌भुत पांच आन्तरिक शत्रुओं को जीते बिना ही शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह शत्रुओं को नहीं जीत पाता, परन्तु उसे शत्रु ही जीत लेते हैं ।

कुसंगति का फल

100. पापियों का संग न छोड़ने से महात्माओं को भी दण्ड का भागी बनना पड़ता है । जैसे सूखे ईंधन के साथ गीला ईंधन भी जल जाता है । अतः पापियों के साथ मेल नहीं करना चाहिए ।

दुष्ट का लक्षण

101. दुष्ट पुरुषों में, आत्मज्ञान, सुख-दुःख के सहन करने की शक्ति, धर्मपरता, सुरक्षित वाणी और दान कभी नहीं होते ।

क्षमा की महिमा

102. मूर्ख पुरुष कठोर और निन्दायुक्त वचनों से महात्माओं को दुःख देते हैं । कठोर कहने वाला ही पाप का भागी होता है परन्तु क्षमा करने वाले को कोई पाप नहीं लगता ।

103. दुष्टों की शक्ति हिंसा है, राजाओं का बल उनके दण्ड-विधान में है, स्त्रियों का बल सेवा है और गुणवानों का बल क्षमा है ।

सुवाणी की महिमा

104. मीठी वाणी का मीठा प्रयोग अनेक प्रकार के कल्याणों को देने वाला होता है और उसी वाणी का बुरा प्रयोग अनर्थ पैदा करता है ।

दुष्ट वाणी का फल

105. तीरों का घाव और कुल्हाड़ी से काटा हुआ वृक्ष फिर भर जाता है पर वाणी द्वारा किया हुआ भयंकर घाव नहीं भरता ।

106. शरीर में घुसे हुए कणि आदि विविध प्रकार के बाणों को निकाला जा सकता है । पर हृदय में घुसे होने के कारण वाणी रूपी बाण को नहीं निकाला जा सकता ।

107. वाक बाण मुख से निकलते हैं, वे दूसरों के मर्मस्थलों पर जा लगते हैं । जिनसे घायल हुआ वह दिन-रात चिन्तित रहता है । अतः पण्डितों को दूसरों के लिए वाक बाण का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

बुद्धि का महत्व

108. देव जिस पुरुष का पराभव चाहते हैं, उसकी बुद्धि को नष्ट कर देते हैं, फिर बुद्धि रहित वह मनुष्य नीच कर्म करने लगता है ।

109. बुद्धि के कलुषित होने तथा विनाश के उपस्थित होने पर सुनीति के समान प्रतीत होने वाली कुनीति (दुर्नीति) मानव के हृदय में बनी रहती है । वह उसके हृदय से दूर नहीं होती ।

अध्याय 3

बुद्धि का महत्व

110. देवता लाठी लेकर पशुओं की रक्षा करने वाले ग्वाले के समान किसी की रक्षा नहीं करते । प्रत्युत जिस पुरुष की रक्षा करना चाहते हैं उसे सद्बुद्धि प्रदान कर देते हैं ।

शुभ भावना से सर्वार्थसिद्धि

111. जैसे-जैसे पुरुष कल्याण के कार्यों में मन लगाता है । वैसे-वैसे ही उसके सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध होते हैं इसमें संशय नहीं ।

वर्जनीय कर्म

112. शराब पीना, लड़ाई, समुदाय से विरोध, पति-पत्नी का अलगाव, संबंधियों में फूट डालना, राजा से द्वेष, स्त्री-पुरुष में विवाद और कुमार्गसेवन– इन कर्मों को छोड़ने योग्य कहा है ।

113. जलते तृणों की मशाल से सुवर्ण, आचरण से भद्रता, व्यवहार से सज्जनता, भय से शूरता, आर्थिक कठिनाइयों में धीरता, दुःख और आपत्तियों में शत्रु और मित्र पहिचाने जाते हैं ।

सब कुछ नाश करने वाले

114. बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, निन्दा धर्म को, क्रोध लक्ष्मी को, दुर्जनों की सेवा शील को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है ।

लक्ष्मी का बढ़ना

115. अच्छे कामों से लक्ष्मी पैदा होती है । यथायोग्य विनियोग से वह बढ़ती है । कर्मकुशलता से उसकी जड़ जमती है और मितव्यय के कारण वह स्थिर रहती है ।

आठ धर्म

116. यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और लोभ का अभाव – ये आठ धर्म के मार्ग कहे गये हैं ।

117. इनमें पहले चार का वर्ग कपट के लिए भी किया जा सकता है । परन्तु दूसरा दम्भियों में नहीं होता केवल महात्माओं में ही होता है ।

सत्य

118. वह सभा, सभा नहीं जिसमें वृद्ध पुरुष न हों । वे वृद्ध नहीं जो धर्म का बखान नहीं करते । वह धर्म नहीं जिसमें सत्य नहीं तथा वह सत्य नहीं जो छल से युक्त हो ।

पुण्य तथा पाप का फल

119. मनुष्य पाप करता हुआ, कुख्याति वाला होकर पाप के बुरे फल को भोगता है । दूसरी ओर पुण्य करता हुआ सुख्याति वाला होकर शुभ फल को भोगता है ।

120. निन्दक, अपशब्द से दूसरे के मर्म को भेदने वाला, निर्दय, सबसे वैर करने वाला और धूर्त ये सब पाप का आचरण करते हुए शीघ्र ही महान् संकट में फंस जाते हैं ।

कर्त्तव्य

121. दिन में ही इतना काम कर ले, जिससे रात को सुखपूर्वक सो सके । आठ मास में ही उन कामों को कर ले, जिनसे वर्षा ऋतु के चार मास सुख से रह सके ।

122. पहली आयु में ही ऐसे काम कर लेने चाहिएं जिससे बुढ़ापे में सुख से रहा जा सके तथा जीवन काल में ही ऐसे काम कर लेने चाहिएं जिससे अगला जन्म सुखी हो ।

प्रशंसा के योग्य

123. पचा हुआ अन्न ही प्रशंसनीय है, शील से जिसने अपनी यौवनावस्था काट ली है ऐसी स्त्री की ही प्रशंसा होती है, संग्राम को जीतने वाला वीर प्रशंसा का भाजन होता है और तपस्या पूर्ण होने पर तपस्वी की प्रशंसा होती है ।

अधर्म का धन

124. अधर्म से कमाए हुए धन से जो दोष छिपाया जाता है वह तो छिपता नहीं, प्रत्युत दूसरा दोष उघड़ आता है ।

तीन उत्तम पुरुष

125. शूरवीर, आचरणशील विद्वान् तथा सेवा-धर्म को जानने वाले—ये तीन प्रकार के पुरुष पृथिवी रूपी लता से सुवर्ण रूपी पुरुष का चयन करते हैं । अर्थात् उनके लिए पृथिवी स्वर्णमयी हो जाती है ।

अध्याय-4

कटुवचन की निन्दा

126. कठोर कहने वाले के प्रति कठोर वचन नहीं कहना चाहिए । इस प्रकार सहन करने वाले का मन्यु (क्रोध) कटुभाषी को जला देता है और वह सहनकर्ता उसके पुण्य को भी ले लेता है ।

127. किसी को बुरा-भला न कहें न ही दूसरे का अपमान करें । मित्र-द्रोह तथा दुष्ट संग भी न करें । अभिमानी तथा कदाचारी न हो । रूखी और चुभती हुई बात किसी को न कहे ।

128. मर्मस्थल को उत्पीड़न करने वाले, कठोरभाषी रूखे वचनों को कहने वाले और वाणी के काँटों से मनुष्यों को पीड़ा देने वाले व्यक्ति को मानवों में सबसे बढ़कर भाग्यहीन समझना चाहिए । उस मनुष्य ने मानो अपने मुख पर कलहवृत्ति को बांध रखा है ।

संगति का फल

129. यदि मनुष्य सन्तों के संग रहता है या असन्तों के, तपस्वियों की संगति करता है या चोरों की, वह उनके वश में ऐसे ही हो जाता है जैसे रंग में रंगा हुआ कपड़ा ।

धार्मिक वचन की श्रेष्ठता

130. अधिक बोलने से न बोलना अच्छा है, यदि बोलना ही पड़े तो सत्य ही बोले । यदि सत्य बोलें तो प्रिय सत्य ही बोलें तथा

प्रिय सत्य बोले तो धर्म के अनुसार ही बोलें। ये चार वचन के भेद हैं।

संगति

131. जैसे के साथ बैठता है, जैसे मनुष्यों की संगति करता है तथा जैसे होने की स्वयं इच्छा करता है पुरुष वैसा ही बन जाता है।

वैराग्य

132. जहाँ-जहाँ से मनुष्य का मन निवृत्त हो जाता है, वहाँ-वहाँ के दुःख से वह छूट जाता है। अतः सब स्थान से मन के निवृत्त हो जाने पर उसे लेशमात्र भी दुःख का अनुभव नहीं होता।

समदर्शी होना

133. विरक्त मनुष्य न किसी से पराजित होता है और न किसी को जीतने की इच्छा करता है। वह न किसी से वैर करता है और न किसी को मारने की इच्छा रखता है। निन्दा और प्रशंसा से समभाव वाला वह न शोक करता है और न हर्ष।

उत्तम पुरुष

134. वह उत्तम पुरुष है जो सब का अस्तित्व चाहता है। किसी के भी विनाश का उसके मन में संकल्प नहीं उठता। वह सत्यवादी, कोमल, इन्द्रियजयी होता है।

मध्यम पुरुष

135. जो किसी को झूठा आश्वासन नहीं देता, कहकर दे देता है और दूसरे के दोष को जानता है, वह मध्यम पुरुष है।

अधम पुरुष

136. जो अच्छी बात पर विश्वास नहीं करता। सदा दूसरों की तरफ से शंकित रहता है और मित्रों का तिरस्कार कर देता है, वह नीच पुरुष है।

धन से कुलीनता नहीं मिलती

137. मनुष्य दुष्टता के बल से, निरन्तर उद्योग से, बुद्धि तथा पुरुषार्थ से धन तो प्राप्त कर सकता है पर न तो वह भली प्रकार प्रशंसा को और न ही कुलीनों के चरित्र को प्राप्त कर सकता है ।

उत्तम कुल

138. जिनका चरित्र और जन्म दूषित नहीं होता, जो चित्त की निर्मलता से धर्म का आचरण करते हैं, जो कुल में विशिष्ट यश की इच्छा करते हैं, जिन्होंने असद् व्यवहार का परित्याग कर दिया है वे कुल महान् कुल कहलाते हैं ।

सदाचार की प्रशंसा

139. कुल चाहे पशु, पुरुष और धन की बहुलता से भी युक्त हों, यदि वे सदाचरण से हीन हैं, तो उनकी गिनती कुलों में नहीं होती ।

140. जिन कुलों में धन तो थोड़ा है पर वे कुल चरित्र से सम्पन्न हैं वे कुल कहलाते हैं और बहुत यश को प्राप्त करते हैं ।

चरित्र-महिमा

141. धन तो आता है और चला जाता है इसलिए यत्नपूर्वक चरित्र की रक्षा करनी चाहिए । धन से नष्ट हुआ मनुष्य नष्ट नहीं होता पर चरित्र से गिरा हुआ नष्ट हो जाता है ।

142. हमारे कुल में कोई भी वैर करने वाला न हो । हमारी जाति में कोई भी राजा अथवा मन्त्री दूसरों के धन हरने वाला न हो, कोई मित्रद्रोही, कपटी, झूठा न हो । वृद्ध माता-पिता, अतिथि और घर में भोजन करने वाले विद्वान् से पहले भोजन करने वाला नहीं होना चाहिए ।

अतिथि का सत्कार

143. अतिथि के सोने के लिए घास, बैठने के लिए भूमि, पीने के लिए पानी और वार्तालाप करने के लिए मीठी वाणी ये चारों पदार्थ सज्जनों के घर में से कभी समाप्त नहीं होते हैं ।

मित्र के लक्षण

144. वह मित्र नहीं जिसके क्रोध से मनुष्य भयभीत हो अथवा जिसका आचरण शंकास्पद हो । अपितु जिस पर पिता के समान विश्वास हो वही मित्र है । अन्य सब तो साधारण मेलजोल वाले हैं ।

145. जिस मनुष्य का चित्त चंचल है जो बूढ़ों की सेवा करनी नहीं जानता जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है उसके लिए मित्रों का संग्रह असम्भव है ।

इन्द्रियों के अधीन पुरुष

146. जिस पुरुष का मन चंचल है जिसे आत्मज्ञान नहीं और जो इन्द्रियों के वश में है उससे अर्थ उसी प्रकार दूर रहते हैं जैसे सूखे तालाब से हंस ।

दुष्ट के लक्षण

147. दुष्ट मनुष्यों का स्वभाव महावात से प्रचालित मेघ के समान चंचल होता है । वे अचानक ही क्रुद्ध हो जाते हैं और बिना कारण प्रसन्न हो जाते हैं ।

संताप की बुराई

148. चिन्ता से रूप नष्ट हो जाता है चिन्ता से बल क्षीण हो जाता है । चिन्ता से ज्ञान की हानि हो जाती है और चिन्ता से मनुष्य रोग ग्रस्त हो जाता है ।

धीर का कर्त्तव्य

149. सुख-दुःख, उत्पत्ति-नाश, लाभ-हानि, जीना-मरना ये द्वन्द्व क्रम से सभी को होते रहते हैं । यह जानकर धीर पुरुष को हर्ष और शोक नहीं करना चाहिए ।

शान्ति के उपाय

150. विद्या और तप के बिना, इन्द्रियों को वश में किए बिना और लोभ के परित्याग किए बिना शान्ति नहीं मिलती ।

परिणाम में सुख देने वाले

151. ठीक रीति से पढ़ने का, उचित रीति से किए युद्ध का, सुकर्म का और ठीक तपे हुए तप का परिणाम रूप सुख अन्त में मिलता है ।

फूट के दोष

152. परस्पर की फूट से युक्त मनुष्य उत्तम शय्या पर सोते हुए भी सुखपूर्वक निद्रा प्राप्त नहीं कर सकते तथा भाटों द्वारा स्तुति किए हुए भी प्रसन्न नहीं होते उन्हें स्त्रियों में भी सुख प्राप्त नहीं होता ।

153. परस्पर की फूट से युक्त मनुष्य धर्म का आचरण नहीं कर पाते । इस संसार में सुख तथा गौरव को भी नहीं प्राप्त होते हैं तथा उन्हें शान्ति भी अच्छी नहीं लगती है ।

पतन के गढ़े में गिरने वाले

154. जो दुष्ट, ब्राह्मणों, स्त्रियों, गौओं ओर स्वजातीय मनुष्यों में अपनी शूरवीरता दिखलाते हैं । हे धृतराष्ट्र ! वे डाल से पके हुए फल की तरह गिर जाते हैं ।

संगठन के गुण

155. जैसे तालाब में एक-दूसरे के सहारे से कमल बढ़ते हैं, ऐसे ही पारस्परिक प्रेम से और एक-दूसरे के सहारे से पारिवारिक लोग फलते-फूलते हैं ।

असंगठन से हानि

156. बलवान्, महान्, दृढ़मूल तथा स्थूल स्कन्ध से युक्त वृक्ष भी अकेला होने के कारण वायु के वेग से क्षण भर में ही ध्वस्त किया जा सकता है ।

157. वृक्ष समूह में साथ-साथ खड़े होते है वे एक-दूसरे के आश्रय के कारण महान् वायु को भी सह लेते हैं । इसी प्रकार हे

राजन्, बलवान् होता हुआ भी अकेला शत्रुओं द्वारा मार दिया जाता है पर समूह में रहता हुआ वह समृद्धि को प्राप्त होता है ।

अध्याय 5

यथायोग्य व्यवहार

158. जो मनुष्य जिस प्रकार का व्यवहार करता है उस मनुष्य से उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए । मायाचारी के साथ माया का ही व्यवहार करना चाहिए और सज्जन को सज्जनता से ही मिलना चाहिए ।

मानव की मृत्यु के साधन

159. अत्यन्त अभिमान, अति विवाद, स्वार्थलिप्सा, क्रोध, आत्म-विडम्बना और मित्रों से वैर, ये छः तीक्ष्ण तलवारें मनुष्य की आयु को काटती हैं तथा मनुष्य को मार डालती हैं ।

हित का वक्ता

160. प्यारी बात कहने वाले मनुष्य बहुत मिल जाते हैं, पर अप्रिय और हितकारी वचन का बोलने वाला तथा सुनने वाला दोनों ही दुर्लभ हैं ।

राजा का सच्चा सहायक

161. जो स्वामी के क्रोध और प्रसन्नता की चिन्ता न करता हुआ धर्मानुसार अप्रिय परन्तु हितकारी वचन कहता है वही वास्तव में राजा का सहायक है ।

द्यूत निन्दा

162. पहले समय में भी यह देखा गया है कि जुआ शत्रुता का कारण बनता है । अतः हंसी के लिए भी बुद्धिमान् को कभी जुआ नहीं खेलना चाहिए ।

अच्छा स्वामी

163. हे राजन् ! स्वामी हित में संलग्न, विश्वसनीय नौकरों पर जो स्वामी कभी क्रोध नहीं करता, नौकर उसी स्वामी पर

विश्वास करते हैं और आपत्ति में भी उसे नहीं छोड़ते ।

राजा के ध्यान देने योग्य

164. नौकरों के वेतन को रोक कर राजा को अपने धन की तथा राज्य की अपूर्व वृद्धि की इच्छा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि वृत्ति से और भोग से हीन होकर विश्वासी अमात्य भी राजा के विरुद्ध होकर उसे छोड़ देते हैं ।

अच्छा नौकर

165. जो भृत्य स्वामी के अभिप्राय को जान आलस्य से रहित हो सारे कार्यों को करता है तथा जो स्वामी के हित में बोलने वाला अनुरक्त आर्य स्वभाव स्वामी की शक्ति को जानने वाला है उस भृत्य की अपने समान पालना करे ।

व्यवहार में वर्जनीय

166. अत्यन्त दयालु राजा, कुलटा स्त्री, राजा का नौकर, पुत्र, भाई, छोटे बच्चे वाली विधवा, सैनिक तथा जिसकी सम्पत्ति हर ली गई है, इनके साथ लेन-देन का व्यवहार छोड़ देना चाहिए ।

नित्य स्नान की महिमा

167. बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, सुख-स्पर्श, सुगन्ध, पवित्रता, धन और कोमलता तथा सुन्दर स्त्री ये सब नित्य स्नान करने वाले को मिलते हैं ।

168. मर्यादित खाने वालों में छः गुण होते हैं—वह स्वस्थ रहता है, तथा उसकी आयु, बल, सुख बढ़ता है । इसकी सन्तान दोष-हीन होती है ।

घर में न ठहरने योग्य

169. इन व्यक्तियों को अपने घर में नहीं रहने देना चाहिए— अकर्मण्य, पेटू, लोकनिन्दित, बहुत प्रपंची, निर्दय और देशकाल को न जानने वाला और शिष्टनिन्दित वेश वाला ।

मांगने के अयोग्य

170. बहुत दुःखी होने पर भी कंजूस, गाली देने वाले, अनपढ़, बनवासी, धूर्त, अपूज्यों की पूजा करने वाले, निर्दयी सबको

शत्रु बनाने वाले और कृतघ्न से कभी याचना नहीं करनी चाहिए ।

छः नराधम

171. आततायी, अत्यन्त आलसी, सदा झूठ बोलने वाला, श्रद्धाहीन, प्रेमहीन, स्वयं को चतुर मानने वाला – इन छः मनुष्यों की आराधना नहीं करनी चाहिए ।

एक दूसरे की सहायता

172. सहयोग से ऐश्वर्य मिलता है । ऐश्वर्य से ही सहयोगी बनते हैं । ये दोनों परस्पर के सहयोग से ही होते हैं एक-दूसरे के बिना सिद्ध नहीं होते ।

जीविका में निर्भय होने के गुण

173. उन्नत होने की शक्ति, विशिष्ट प्रभाव, प्रतिद्वन्द्वियों को जीतने के लिए तेज, आत्मबल, प्रगतिशीलता तथा दृढ़संकल्पता–ये गुण जिस पुरुष में हैं उसे जीविका के नाश का भय कैसे हो सकता है ?

दोषदृष्टि वाला दुष्ट व्यक्ति

174. दुष्ट जन दूसरों के उत्तम गुणों के जानने की उतनी इच्छा नहीं करते जितनी कि उनके दोषों को जानने की इच्छा रखते हैं ।

धर्म तथा अर्थ का सम्बन्ध

175. बुद्धिमान मनुष्य अर्थ की परम सिद्धि को चाहता हुआ, प्रथम धर्म का ही आचरण करे । जैसे स्वर्ग से अमृत पृथक् नहीं हो पाता वैसे ही धर्म से अर्थ भी दूर नहीं होता ।

धर्म, अर्थ और काम का अनुष्ठान

176. जो मनुष्य समयानुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह इस संसार में और परलोक में भी धर्म, अर्थ और काम को समष्टिरूप में प्राप्त करता है ।

लक्ष्मी का पात्र

177. जो मनुष्य, क्रोध या हर्ष के कारण आए हुए दुःखात्मक तथा आनन्दात्मक वेग को रोक सकता है तथा आपत्तियों में मोह को प्राप्त नहीं होता वह ही लक्ष्मी प्राप्त करने का पात्र है ।

सच्चे बल

178. राज पुरुषों के पांच प्रकार के बल होते हैं, इनमें जो बाहुबल है वह सबसे तुच्छ कनिष्ठ होता है ।

179. तुम्हारा कल्याण हो, अच्छे मन्त्रियों की प्राप्ति दूसरा बल है तथा धन की प्राप्ति तीसरा बल है ।

180. दादा-परदादा से आया हुआ कुल का बल चौथा बल है ।

181. जिसमें इन चारों बलों का संग्रह हो जाता है वह सब बलों में श्रेष्ठ तथा पांचवा बल बुद्धि का बल है ।

वैरी से सावधान रहना

182. जो मनुष्य बड़े भारी अपकार को कर सकने में समर्थ है, उससे शत्रुता करके 'मैं उसकी पहुँच' से परे हूँ इस प्रकार का विचार अपने हृदय में नहीं लाना चाहिए ।

अनादर के अयोग्य

183. सांप, अग्नि, सिंह तथा कुलीन मनुष्यों का निरादर कभी नहीं करना चाहिए, ये सब अति तेजस्वी होते हैं ।

अध्याय 6

संन्यासी का लक्षण

184. क्रोधहीन, मिट्टी, पत्थर तथा कंचन को सम समझने वाला, शोक से मुक्त, संधि और विग्रह से ऊपर उठा हुआ, निंदा और प्रशंसा से विरक्त, उदासीन की भाँति प्रिय और अप्रिय का परित्यागी ही संन्यासी होता है ।

बुद्धिमान का तिरस्कार न करे

185. बुद्धिमान का अपकार करके ''मैं उससे दूर हूँ'' इस प्रकार समझ कर आश्वस्त नहीं होना चाहिए । क्योंकि बुद्धिमान

की भुजाएं लम्बी होती हैं । वह अपकृत हुआ उन भुजाओं से अपकार करने वाले की हिंसा कर देता है ।

नारी महिमा

186. सौभाग्यवती कल्याणी स्त्रियां घर को प्रकाशित करने वाली होती हैं । अतः वे पूजा के योग्य हैं । स्त्रियां घर की लक्ष्मी बताई गई हैं । अतः उनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए ।

धन देने वाली वसुन्धरा

187. जो वृथा क्रोध नहीं करता, न ही वृथा प्रसन्न होता है, जो कामों को करके स्वयं जांचता है तथा जो राज्य के कोश का निरीक्षण स्वयं ही करता है, ऐसे राजा को पृथ्वी सचमुच ही धन देने वाली होती है ।

चरित्र की शान

188. ब्राह्मण को ब्राह्मण जानता है, स्त्री को पति जानता है, मंत्री को राजा ही जान सकता है तथा राजा को अन्य राजा ही जान सकता है ।

शत्रु की उपेक्षा मत करो

189. वश में आए हुए मारने के योग्य शत्रु को राजा कभी न छोड़े शत्रु को न मारने से उससे शीघ्र ही हानि होने का भय है ।

क्रोध के अपात्र

190. देवता, राजा, ब्राह्मण, वृद्ध, बालक, रोगी इन पर क्रोध नहीं करना चाहिए और आते हुए क्रोध को प्रयत्न से रोक देना चाहिए ।

अयोग्य राजा

191. जिसकी प्रसन्नता तथा रोष निरर्थक है उस राजा को प्रजाएँ नहीं चाहती हैं जैसे स्त्री नपुंसक पति को नहीं चाहती ।

बुद्धिमान

192. बुद्धि का फल धन-प्राप्ति और जड़ता का फल दरिद्रता ही नहीं है। इस लोक के धन-प्राप्ति तथा निर्धनता के क्रम को बुद्धिमान ही जानता है, अन्य नहीं।

अनर्थ के पात्र

193. कदाचारी, मूर्ख, ईर्ष्यालु, अधार्मिक, पुरुष और क्रोधी इनको अनर्थ जल्दी ही दबोच लेते हैं।

प्राणियों को अपना बनाने के गुण

194. निरर्थक वाद न करना, दान देना, समय की मर्यादा को न तोड़ना, खूब सोच-विचार कर बात कहना – ये गुण सभी को अपना बना लेते हैं।

प्रशंसनीय व्यक्ति

195. निरर्थक संवाद न करने वाला, चतुर, उपकार को मानने वाला, बुद्धिमान, सरल मनुष्य धन के न होने पर भी सबको अपना बना लेता है।

निर्दोष पर क्रोध का फल

196. स्वयं दोषी होकर जो निर्दोष आत्मीय जन को क्रोध दिलाता है, वह रात को भी सुख से सो नहीं पाता। जैसे सर्प वाले घर में सुख से निद्रा नहीं आती।

मरे हुए के समान व्यक्ति

197. धूर्त, भाट और वेश्याएँ जिस मनुष्य की प्रशंसा करती हैं, वह मनुष्य जीवित नहीं अर्थात् सज्जन जिसकी प्रशंसा करते हैं, वही जीवित है।

अध्याय 7

समय को न देखकर बोलने वाला

198. समय के प्रतिकूल वचनों को बोलता हुआ बृहस्पति समान पुरुष भी मूर्ख समझा जाता है ।

उन्नतिप्रद हानि भी अच्छी है

199. जो प्रगति क्षय का कारण बने, वह प्रगति अभिनन्दनीय नहीं । वह क्षति भी अभिनन्दीय है जो प्रगति करा सके ।

200. वह हानि, हानि नहीं जो भविष्य में वृद्धि को प्राप्त कराए । हानि वही है जो भविष्य में महानाश करा दे ।

त्याग के योग्य व्यक्ति

201. जो दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं, दूसरों को दुःखी करने तथा पारस्परिक विरोध डालने में सदा जागरूक होकर यत्न करते हैं । ऐसे व्यक्ति त्याग के योग्य हैं ।

202. जिनकी दृष्टि दोषयुक्त है, जिनके साथ रहना भयपूर्ण है जिनसे धन लेने में दोष और धन देने में बड़ा भारी भय है । ऐसे पुरुषों को सदा छोड़ देना चाहिए ।

जाति के लोग

203. संबंधी ही मनुष्य को डुबा देते हैं और वही पार भी करा देते हैं । सज्जन पार उतार देते हैं तथा दुष्ट डुबा देते हैं ।

छोड़ने योग्य कर्म

204. जीवन क्षणिक है इसलिये जिन कामों के करने से रात को चारपाई पर पड़ा मनुष्य पश्चाताप करे, उन कामों को पहले से ही नहीं करना चाहिए ।

विद्वानों के वचन पालन से यश

205. जो पुरुष परिणाम का विचार करके विद्वानों के वचनों को क्रियान्वित करता है वह बहुत कालपर्यन्त यशस्वी रहता है ।

नष्ट वस्तु

206. समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, न सुनने वाले को सुनाया हुआ वचन नष्ट हो जाता है । अजितेन्द्रिय मनुष्य का शास्त्र ज्ञान और राख में किया हुआ हवन नष्ट हो जाता है ।

बुराइयों के नाश के कारण

207. विनय अपयश का नाश कर देता है, पराक्रम अनर्थ का, क्षमा क्रोध का और आचार अलक्षण (दुर्गुण) का नाश कर देता है ।

रक्षा के योग्य मित्र

208. विद्वानों की सेवा करने वाले, वैद्य, धार्मिक, प्रियदर्शन, मित्रवान्, मधुरभाषी सुहृद की सर्वथा रक्षा करनी चाहिए ।

मैत्री के अयोग्य

209. अभिमानी, मूर्ख, भयानक, आततायी और अधार्मिक इनसे बुद्धिमान को मैत्री नहीं करनी चाहिए ।

सफल पुरुष

210. भावी दुःख के निराकरण के उपाय को जानने वाले, वर्तमान में आए दुःख को दृढ़ता से सहने वाले तथा अतीत दुःख को न सोचकर शेष कार्य करने वाले मनुष्यों का प्रयोजन कभी नष्ट नहीं होता ।

लक्ष्मी चंचल है

211. लक्ष्मी न अधिक गुण वालों के पास न अत्यन्त निर्गुण के पास रहती है क्योंकि यह न गुणों की कामना करती है न निर्गुणों से प्रेम करती है ।

बल

212. तपस्वियों का बल तप है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ज्ञान है, दुष्टों का बल हिंसा है, गुणवानों का बल क्षमा है ।

अपने प्रतिकूल बात दूसरों के लिए न करें

213. जो कार्य अपने प्रतिकूल हो वह दूसरों के लिए नहीं करना चाहिए। यह धर्म का संक्षिप्त स्वरूप है इससे अन्य प्रवृत्ति वासनामूलक है।

विश्वास के अपात्र

214. धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रूर, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक का विश्वास नहीं करना चाहिए।

विजय के साधन

215. सहनशीलता से क्रोध पर, सद्-व्यवहार से दुष्ट पर, दानवान से कृपण पर और सत्य से झूठ पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

शोक के योग्य कौन

216. विवाहित पुरुष शोक के योग्य है। संतानोत्पत्ति के विचार के अभाव में केवल वासनाजन्य स्त्री-पुरुष का संयोग भी शोचनीय है, भूखी प्रजा भी शोचनीय है। राजा से रहित राष्ट्र भी शोचनीय है।

इन आचरणों से जय असम्भव है

217. अधिक सोने से निद्रा नहीं जीती जाती, अधिक वासना से स्त्रियां वश में नहीं होती। ईंधन से अग्नि शांत नहीं होती और पान करने से सुरा पर विजय नहीं पाई जा सकती।

यथार्थ ज्ञान होने पर मोह नहीं

218. जिसे यह ज्ञान हो जाता है कि पृथ्वी पर जो धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं – ये केवल एक के लिए ही नहीं है अपितु सभी के लिए है वह मूढ नहीं है।

अध्याय 8

यशस्वी पुरुष

219. जो व्यक्ति सज्जनों से समादृत हुआ अनासक्ति के भाव से अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करता है, उसे यश शीघ्र ही मिल जाता है। सदाचारी सदा सुखी और प्रसन्न रहते हैं।

विद्या के शत्रु

220. ईर्ष्या करना विद्या की तत्काल मृत्यु है। बहुत वाद-विवाद विद्या की हत्या है। गुरु-जन की सेवा न करना, अतिशीघ्रता और अपनी विद्या का अभिमान ये भी तीनों विद्या के शत्रु हैं।

विद्यार्थियों के दोष

221. आलस्य मद और मोह, चंचलता, अश्लील गोष्ठी, धृष्टता, अभिमान तथा विद्या-दान का अभाव—ये सात विद्यार्थियों के दोष हैं।

222. सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख का ध्यान नहीं रखना चाहिए।

हत्यारे

223. तृष्णा धैर्य का, काल समृद्धि का, क्रोध लक्ष्मी का, यश कंजूसी का और सेवा का अभाव पशुओं का नाश कर देता है, क्रुद्ध हुआ एक सच्चा ब्राह्मण राष्ट्र को नष्ट कर देता है।

धर्म की महिमा

224. बुद्धिमान पुरुष को जीवन के हेतु भी कामनावश, भयवश और लोभवश धर्म का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।

मरे हुए का कोई नहीं

225. जैसे फल-फूल से रहित वृक्ष को पक्षीगण छोड़ देते हैं, इसी प्रकार मरे हुए व्यक्ति को बिरादरी के लोग, मित्र तथा पुत्रादि छोड़कर चले जाते हैं।

पुण्यकर्मी

226. आत्मा नदी रूप है, पुण्य इसका घाट है। नदी का उद्‌भव सत्य है, धैर्य इसके किनारे हैं, दया इसकी लहरें हैं। इसमें पुण्यकर्मी, अलोभी और पुण्यात्मा ही स्नान करके पवित्र होते हैं।

जीवनरूपी नदी

227. काम, क्रोध आदि मगरमच्छों से भरी हुई, पंचइन्द्रियरूपी जल वाली इस जीवन-नदी को पार करने के लिए धैर्य-रूपी नाव बनाकर जीवन की कठिनाइयों को पार करो ।

किनकी कैसे रक्षा करनी चाहिए

228. पेट तथा मूत्रेन्द्रिय की धैर्य से, हाथ-पाँव की आँख से, आँख-कान की मन से, मन और वाणी की कर्म से रक्षा करनी चाहिए ।

वृद्धों की पूजा

229. बुद्धि में महान्, धर्म में बड़े, विद्या में निष्णात और आयु में ज्येष्ठ अपने बन्धु किसी भी अवसर पर पूजा करके तथा उन्हें प्रसन्न करके जो सम्मति लेता है वह कभी मूढ नहीं होता ।

अध्याय 9

इन्द्रिय दमन

230. निश्चय पर पहुँचे हुए वृद्ध जनों ने सर्वसाधारण तथा ब्राह्मण के लिए निःश्रेयस का मार्ग इन्द्रिय दमन बताया है ।

दमनशील पुरुष

231. क्षमा का धारण, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, जितेन्द्रियता, धैर्यप्रकृति, कोमलता, लज्जा, अचंचलता, अकृपणता, अक्रोध, संतोष तथा श्रद्धायुक्त होना आदि गुण जिस पुरुष में है, हे राजन् ! वह 'दान्त' कहलाता है ।

232. क्रोध, ईर्ष्या और शोक ये दान्त पुरुष में नहीं होते तथा जो पुरुष कुटिल नहीं, धूर्त नहीं, शुद्ध है, वह दान्त कहलाता है ।

233. स्वयमेव पहले आचरण किये हुए और सज्जनों द्वारा आचरण किए गए को शुभ कर्म करते है, उन्हीं कर्मों पर स्थिर रहकर दमनशील शान्त पुरुष सुखी होते हैं ।

अध्याय 10

वृद्धों का संग

234. जब सभी जन प्रसन्नचित्त होकर विद्या, आयु और अनुभव से युक्त वृद्धों की मंत्रणा के अनुसार चलते हैं, तब वे सदा अपराजित रहते हैं । जैसे सिंह से सुरक्षित वन किसी से नष्ट नहीं किया जा सकता ।

लक्ष्मी का स्वागत

235. जो निरन्तर धन प्राप्त करके भी निर्धन बने रहते हैं वे ही अपनी लक्ष्मी को शत्रुओं के अर्पण कर देते हैं ।

—महाभारत (उद्योगपर्व अध्याय 33, 40, 63 व 64)

4. शुक्रनीति

अध्याय-1

नीतिशास्त्र की महिमा

1. नीतिशास्त्र को सब मनुष्यों ने जीवनोपयोगी, लोकमर्यादा का स्थापक, धर्म, अर्थ और काम का साधक तथा मोक्ष का प्रदाता कहा है ।
2. जैसे भोजन के बिना शरीर का अस्तित्व स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार नीति के बिना लोक में वर्तमान सभी प्रकार के व्यवहार स्थिर नहीं रह सकते हैं ।

स्वधर्मपालन

3. जो व्यक्ति अपने धर्म में संलग्न रहता है वह संसार में तेजस्वी होता है । स्वधर्म पालन ही परम धर्म है ।

धूर्त

4. रजोगुणी मनुष्य दम्भी, लोभी, विषयी, ठग और कपटी होता है । उनके मन, वचन और कर्म में विषमता होती है ।

कर्म

5. सुगति तथा दुर्गति का कारण कर्म ही होता है चाहे वे कर्म इस जन्म के हों या पूर्व जन्मों के हों । कोई भी मनुष्य क्षण-भर के लिए बिना कर्म के नहीं रह सकता ।

कर्म के अधीन वर्ण

6. कोई भी मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा म्लेच्छ जन्म से नहीं होता । गुण तथा कर्म से ही उनका परस्पर भेद है ।
7. ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं, इस कारण से वे सभी क्या ब्राह्मण है । कर्म से ही ब्रह्मतेज प्राप्त होता है ।
8. सत् कर्म से प्रिय होता है और असत् कर्म से अप्रिय होता है । अतः शास्त्र से सत् तथा असत् कर्म का ज्ञान प्राप्त करके

असत् कर्म को छोड़कर सत्कर्म का आचरण करना चाहिए ।

सुशिक्षा

9. नीति का मूल कारण विनय है । शास्त्र के तत्वों को समझ लेने से विनय आती है । इन्द्रिय का संयम भी विनय का कारण है ।

10. राजा अर्थात् शासन करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह पहले अपने आप को विनीत बनाए । तदनन्तर अपने पुत्रों, सचिवों, सेवकों और प्रजा को विनीत बनाए ।

मैत्री

11. जिस शासक के सचिव संयमी नहीं, राज्याधिकारी विनीत नहीं । पुत्रादि संबंधी दुष्ट हैं उनका स्वामित्व नष्ट हो जाता है ।

इन्द्रिय संयम

12. निबिड़ विषयरूपी जंगल में इधर-उधर भाग रहे और नाश कर रहे इन्द्रिय रूपी मद हाथी को ज्ञान के अंकुश से वश में करना ही उचित है ।

13. मन विषयरूपी मांस के लोभ से इन्द्रियों को प्रेरणा करता है । अतः प्रयत्नपूर्वक उस मन को ही संयत करना उचित है । उस मन को जीत लेने पर मनुष्य जितेन्द्रिय हो जाता है ।

जीन अनर्थकारी

14. जुआ, स्त्री और सुरा–ये तीनों अयुक्त रूप से सेवन किए जाएँ, तो बड़ा भारी अनर्थ कर देते हैं । यदि इन्हें युक्ति से सेवन किया जाए, तो धन, पुत्र और बुद्धि के देने वाले बन जाते हैं ।

15. धर्मराज युधिष्ठिर तथा राजा नल सरल भाव से जुआ खेलते हुए राज्य से भ्रष्ट हो गए । खेलने में चतुर मनुष्यों के लिए कपट सहित जुआ, धन के लाने वाला होता है ।

16. अंगनाएँ (स्त्रियाँ) जितेन्द्रिय मुनि के मन को भी अवश्य रागयुक्त कर देती हैं। सामान्य व्यक्तियों को तो उन्हें आकर्षित करना बड़ा ही सरल है।

17. अनासक्त पुरुष के लिए स्त्री सदा सुख देने वाली होती है। उस जैसी दूसरी कोई भी घर के कार्यों में सहायक नहीं हो सकती।

18. अधिक सुरा का पान करते हुए बुद्धि नष्ट हो जाती है। परन्तु यदि उचित मात्रा में सुरा का पान किया जाए तो सुरा प्रतिभा के देने वाली, बुद्धि को निर्मल करने वाली, धीरता को देने वाली तथा चित्त को स्थिर करने वाली होती है।

काम और क्रोध

19. काम तथा क्रोध भी सब से बढ़कर मत्त देने वाले हैं। इन दोनों को उचित रीति से प्रयुक्त करना चाहिए।

20. राजा के लिए आवश्यक है कि उसे 'काम' का प्रयोग परस्त्री के संगम में नहीं करना चाहिए। दूसरे के धनों के प्रति 'लोभ' को रोके रखना चाहिए तथा अपनी प्रजा को दण्ड देने में 'क्रोध' का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नीतिवाक्य

21. क्या कोई पर-स्त्री के संगम से गृहस्थ, अपनी प्रजा को दंड देने से शूर और दूसरों के धनों से धनी कहला सकता है।

अध्याय-2

उच्छृंखल शासक

22. उच्छृंखल स्वामी सदा अनर्थ का ही भाजन बनता है। उसका राष्ट्र जल्दी टूट-फूट जाता है और उसकी प्रजाएँ उसके विरुद्ध हो जाती हैं।

विषमता

23. मनुष्यों में व्यवहार की विचित्रता, अपेक्षाकृत गुरुता, लघुता तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से बुद्धि का वैभव दिखाई देता है ।

सहायक की आवश्यकता

24. एक ही मनुष्य सभी कुछ जानने में समर्थ नहीं हो सकता । अतः राज्य की समृद्धि के लिए सहायकों को अपने पास रखना राजा के लिए उचित है ।

अध्याय-3

धर्म

25. सुख-प्राप्ति के लिए ही सभी मनुष्यों की प्रवृत्तियां देखी जाती हैं । सुख धर्म के बिना नहीं मिलता है । अतः धार्मिक बनना आवश्यक है ।

पाप

26. यदि कभी मन में पाप का विचार आए, तो उस पाप को आचरण में नही लाना चाहिए । धर्मवेत्ता कहते हैं कि जब कोई कर्म किया जाए, तभी उसका फल मिलता है ।

समता

27. बेरोजगारी, रोग और शोक से पीड़ित प्राणियों का शक्ति के अनुसार साथ देना चाहिए, अर्थात् उनकी सहायता करनी चाहिए । क्षुद्र से क्षुद्र चिऊँटी तक के प्राणियों को भी अपने समान चेतन समझना चाहिए ।

28. यदि किसी ने अपकार भी किया हो, तो भी उस पर उपकार करने को अग्रसर रहना चाहिए । सम्पदा और विपदा में एक जैसा रहना चाहिए । कोई किस कारण से बड़ा बना है, उस कारण के प्रति तो ईर्ष्या करनी चाहिए । परन्तु उस व्यक्ति से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए ।

भाषण

29. पहले भाषण करने वाला, मुख पर सदा मुस्कराहट वाला, सुन्दर स्वभाव सम्पन्न, दयायुक्त और सरल होना चाहिए। समय पर हितकारी तथा परिमित, सुसंगत तथा मधुर भाषण करना चाहिए।

गोपनीय

30. किसी के प्रति अपनी शत्रुता को, अपने प्रति किसी की शत्रुता को, अपने अपमान को और स्वामी के स्नेह-परित्याग को कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

व्यवहार

31. दूसरों को प्रसन्न करने की दक्षता प्राप्त करने वाले मनुष्य को उचित है कि जो मनुष्य जिस ढंग से प्रसन्न होता है, मनुष्य के उस आशय का ध्यान करते हुए उससे उसी प्रकार व्यवहार करे।

इन्द्रिय

32. पाँच ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को पीड़ित नहीं करना चाहिए। न ही इन्हें विषयों में लगाना चाहिए क्योंकि ये प्रमथन (हत्या) करने वाली हैं और वे मन को अपनी ओर खींच लेती हैं।

33. मृग, हाथी, पतंगा, भौंरा, मछली ये सभी शब्द, स्पर्श, रूप, गंध और रस – इन विषयों से नष्ट हो जाते हैं।

परिवार रक्षा

34. स्त्री तथा पुत्र को इन साधनों से अपने अनुकूल बनाना चाहिए–वस्त्र, अन्न और भूषण, प्रेम, मधुर वाणी और सामीप्य भाव।

सदाचार

35. नदी को भुजाओं से पार नहीं करना चाहिए, ढकी हुई अग्नि पर चलना उचित नहीं, संदेह वाली नौका पर तथा वृक्ष पर न चढ़ना तथा दुष्ट सवारी नहीं करनी चाहिए।

36. नासिकाओं को सदा खुजलाना, बिना कारण भूमि को हाथों से कुरेदना और इकट्ठे दोनों हाथों से अपने सिर को खुजलाना नहीं चाहिए ।

37. बुद्धिमान पुरुष के लिए सभी व्यवहारों में समाजस्थ जन ही गुरु होता है । अतः विवेचक पुरुष को समाज-संबंधी व्यवहार में उसी का अनुकरण करना चाहिए ।

38. राज सद्धर्म, देश सद्धर्म, कुल सद्धर्म और जाति सद्धर्मों को कभी भी दूषित नहीं करना चाहिए, आदर बुद्धि से सदा इनका पालन करना चाहिए । समर्थ होते हुए भी लौकिक व्यवहारों का मन से भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

39. जो बात अनुचित हो गई है उसे तर्क-बल से उचित सिद्ध नहीं करना चाहिए । शास्त्र तथा लोकव्यवहार से ठीक जानकर बुद्धिमान को त्याज्य का परित्याग कर देना चाहिए ।

40. इस अपराधी ने हज़ारों अपराध किये हैं । मेरे एक अपराध को कर लेने से क्या हानि होगी । यह विचार करते हुए पाप को छोटा नहीं समझना चाहिए ।

41. स्त्री और बालक की रक्षा, रोग, सेवक, पशु, धन, विद्या का अभ्यास और सज्जनों की सेवा इनकी उपेक्षा करने से हानि होती है ।

दुर्भाग्य

42. यदि बाल्यावस्था में माता बच्चे की पालना नहीं करती, पिता उसकी शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करता, यदि शासक ही धन का अपहरण कर लेता है, तो इस विषय में रोने से क्या लाभ है ?

43. मित्र, सम्बन्धी और शासक – भली प्रकार सेवा किए हुए भी यदि कोप करते हैं अर्थात् पीड़ा पहुँचाते हैं और यदि आग तथा बिजली घर का सर्वनाश कर दे तो रोने से क्या लाभ ?

44. अनुभवी विद्वानों की सम्मति का अनादर करके यदि किसी ने अभिमान से कार्य किया है और उस कार्य का परिणाम विपरीत निकला है तो इन बातों को रोने से क्या लाभ ?

नीतिवाक्य

45. स्व-संबंधियों से विरोध नहीं करना चाहिए, बलवान् से स्पर्धा करनी उचित नहीं, स्त्री, बालक, वृद्ध और मूर्खों से विवाद नहीं करना चाहिए ।

46. स्वादु भोजन अकेले नहीं खाना चाहिए, विचार योग्य बातों को अकेले चिन्तन नहीं करना चाहिए, यात्रा में अकेले नहीं जाना चाहिए और सोए हुओं में अकेले को जागना उचित नहीं ।

47. सुख की कामना वाले पुरुष को इन छः दोषों का परित्याग कर देना चाहिए—आवश्यकता से अधिक नींद, अनुत्साह, भय, क्रोध, आलस तथा काम को लटकाने की भावना ।

48. सदा देर तक सुनना चाहिए, परन्तु सुने हुए को जल्दी जान लेना चाहिए । जान करके, ठीक उसी पर आचरण करना चाहिए । काम इच्छा के वश में होकर किसी का ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

49. पदार्थ को खरीदने और बेचने में अधिक उत्कण्ठा और अधीरता नहीं दिखानी चाहिए । बिना कार्य के तथा पहिचान के बिना किसी के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए ।

50. बिना पूछे किसी को अपने घर का काम नहीं कहना चाहिए । वार्तालाप इस ढंग से करें जो परिमित हो, परन्तु अर्थ में प्रचुरता रखता हो तथा वह कार्य के सिद्ध कराने वाला हो ।

51. बिना स्वयं आचरण किए, अर्थात् बिना अनुभव किए अपने विचार को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत नहीं करना चाहिए । दूसरे के विचार को भली प्रकार जानकर उत्तर में वह नहीं कहना चाहिए जो उसे ज्ञात नहीं ।

52. पति-पत्नी के तथा पिता-पुत्र के झगड़े में साक्षी नहीं बनना चाहिए । कर्त्तव्य कर्म-संबंधी विचार को सुगुप्त रखना चाहिए और शरणगत का परित्याग नहीं करना चाहिए ।

53. अपनी शक्ति के अनुसार ही इच्छा करनी चाहिए । करते हुए यदि विपदा ग्रस्त हो जाए, तो मोहग्रस्त नहीं होना चाहिए ।

किसी की दुखती रग को छूना नहीं चाहिए। किसी के मिथ्या अपवाद का बखान नहीं करना चाहिए। असभ्य वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

54. लोक जिससे विद्वेष करते हैं वह बात चाहे करने योग्य भी है, तो भी सुख का कारण नहीं होती। किसी के कथन का अपनी दलीलबाजी से खण्डन नहीं करना चाहिए।

55. झटपट नहीं बोल पड़ना चाहिए, परन्तु सोच-विचार कर उत्तर देना चाहिए। शत्रु के गुणों को भी ग्रहण कर लेना चाहिए। परन्तु इसके विपरीत गुरु के दुर्गुणों का भी परित्याग करना आवश्यक है।

संसार चक्र

56. न सदा उन्नति रहती है और न ही सदा अवनति रहती है। अपने पूर्वकृत कर्मों से ही मनुष्य सदा अमीर ग़रीब बन जाता है। अतः प्राणिमात्र से मैत्री का त्याग नहीं करना चाहिए।

पाँच प्रकार के मनुष्य

57. दीर्घदर्शी सदा बने रहना चाहिए। प्रत्युत्पन्नमति (शीघ्र कोई उपयुक्त बात सोचने वाला) कभी-कभी होना चाहिए। साहसी, आलसी और काम को लटकाने वाला कभी नहीं होना चाहिए।

दीर्घदर्शी

58. जो आरम्भ में ही सभी कठिनाइयों को जानकर कार्य को आरम्भ करता है, उसका नाम दीर्घदर्शी है और वह देर तक सुख भोगता है।

प्रत्युत्पन्नमति

59. जब काम सिर पर आ पड़े तो जो कार्य करने का ठीक निश्चय कर लेता है वह प्रत्युत्पन्नमति होता है। एक ओर तो कार्य का गौरव होता है और दूसरी ओर कार्य करने वाले की चपलता होती है।

आलसी

60. आलसी पुरुष समय पर कार्य करने का यत्न नहीं करता उसकी सफलता कभी नहीं होती । वह वंश-सहित नष्ट हो जाता है ।

साहसी

61. साहसी कर्म के परिणाम को जाने बिना केवल पाश्विक बल से काम करने का यत्न करता है । अतः वह उस कर्म से अथवा उस कर्म के दुष्फल से दुःख का भागी होता है ।

देर से काम करने वाला

62. प्रत्येक कार्य में देर करने वाला फल के परिणाम में कमी होने के कारण दुःखी होता है । अतः दीर्घदर्शी बनना चाहिए ।

63. कभी-कभी पाश्विक बल से भी हुआ कार्य सफल हो जाता है और कभी अच्छी तरह विचार कर किया हुआ कार्य भी निष्फल हो जाता है । इसे देखकर पाश्विक बल से कार्य नहीं करना चाहिए ।

कुकर्म का निषेध

64. कभी-कभी कुकर्म से भी इष्टसिद्धि हो जाती है और सत्कार्य से भी अनिष्ट हो जाता है, फिर भी वह सत्कार्योत्पन्न अनिष्ट असत्कार्य का प्रेरक नहीं होना चाहिए ।

मित्रमहिमा

65. नौकर, भाई, पुत्र और पत्नी भी जिस कार्य को नहीं कर सकते । मित्र उसी कार्य को निःशंक होकर कर देते हैं ।

66. जो मूर्ख व्यक्ति मित्र की ठीक-ठीक पहचान न करके उसे करने योग्य काम में लगाता है, उसका वह कार्य नष्ट हो जाता है ।

67. किसी का मानसिक भाव ठीक-ठीक रूप से जानना आसान नहीं है । अतः उसके जानने के लिए यत्न करना उचित है । मनुष्यों के लिए मित्र प्राप्ति बहुत श्रेष्ठ है ।

उग्रता तथा कटुता में दोष

68. कभी भी कड़ा दण्ड देने वाला तथा कडुआ बोलने वाला नहीं होना चाहिए । उग्र दण्ड तथा कटु वचन से स्त्री और पुत्र भी दुःखी हो जाते हैं । दान तथा मधुर भाषा से पशु भी वश में हो जाते हैं ।

अनेक प्रकार के अभिमान का त्याग

69. विद्या, शूरता, धन, कुल और बल से अभिमानी नहीं होना चाहिए । अभिमान किसी भी अवस्था में ठीक नहीं ।

विद्या का अभिमानी

70. विद्यामत अपनी तर्कबुद्धि के आगे विद्वानों के वचनों को तुच्छ समझता है और स्वमान्य अनर्थकारी बात को भी परम अर्थ से युक्त समझता है ।

शस्त्राभिमानी

71. शूरता में अभिमान करने वाला शस्त्र पर ही आधार रखकर व्यूह आदि सम्बन्धी युद्ध-नीति का तिरस्कार कर देता है और बिना सोचे युद्ध करता हुआ अपने प्राणों का परित्याग कर देता है ।

धन का अभिमानी

72. धन का अभिमानी पुरुष अपनी दुष्कीर्ति का भी ध्यान नहीं करता और उलटे काम करने लगता है । जैसे बकरा अपने मूत्र के दुर्गंध का विचार किए बिना उस अपवित्र दुर्गन्ध भरे मूत्र से अपने मुख को गीला करता है ।

कुलाभिमानी

73. संबंधियों के अस्तित्व से अभिमानी पुरुष श्रेष्ठ तथा अन्य साधारण सभी व्यक्तियों का अपमान कर देता है तथा निन्दित कार्य करने में रुचि बना लेता है ।

बलाभिमानी

74. बलाभिमानी पुरुष शारीरिक लड़ाई में ही मन लगाता है । वह अपने बल से पशु आदि सभी को पीड़ा पहुँचाता है ।

मान का अभिमानी

75. गर्वित मनुष्य सारे संसार को तिनके के सामन तुच्छ समझता है । सभी से अयोग्य होता हुआ भी ऊँचा आसन चाहता है ।

विद्यादि के फल

76. विद्या का फल ज्ञान और सुशिक्षा है, धन का प्रयोजन, यज्ञ और दान है, बल का लाभ सज्जनों की रक्षा करना कहा है ।

नीतिवाक्य

77. दूसरे का तुच्छ पदार्थ भी बिना दिए नहीं लेना चाहिए । किसी का किंचित्मात्र भी दोष नहीं कहना चाहिए । स्त्री पर दोषारोपण करना उचित नहीं है ।

फूट नहीं डालनी चाहिए

78. पति-पत्नी में, माता-पिता में, भाई-भाई में, स्वामी-नौकर में, बहिनों-बहिनों में, मित्रों-मित्रों में, गुरु-शिष्य में फूट डलवाने का यत्न नहीं करना चाहिए ।

सदाचार

79. खड़े हुए दो व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर रहे हों, तो उनके बीच में से गुजरना उचित नहीं । मित्र, भाई और बन्धु से अपने समान व्यवहार करना उचित है ।

80. यदि अपने घर में पुत्र हो, तो संतान वाली अपनी पुत्री को तथा पतियुक्त बहिन को घर में स्थिर वास नहीं देना चाहिए । उन दोनों के अनाथ हो जाने पर तो अवश्य उनकी

अन्न आदि से पालना करनी चाहिए ।

81. प्रार्थी यदि प्रार्थना करता है तो उसे तीखा-कडुआ उत्तर नहीं देना चाहिए । यदि आप उसका कार्य करने में समर्थ हैं तो उसका कार्य कर देना चाहिए या करा देना चाहिए ।

82. दाता पुरुषों का, धार्मिकों का तथा शूरों का गुण-कीर्तन सुनने में यत्न करना चाहिए । इन दोषों को नहीं देखना चाहिए ।

83. मनुष्य को सदा समय पर हितकारी परिमित आहार तथा विहार करना चाहिए । सभी को खिला कर खाना चाहिए । दीनता के भाव का परित्यागी, पवित्र और अच्छी नींद सोने वाला होना चाहिए ।

84. अन्न की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए, स्वस्थ होने पर ही प्रीतिभोजन को स्वीकार करना चाहिए, अन्न को रसों से युक्त, मधुर तथा श्रेष्ठ जानना चाहिए ।

85. रात के पहले पहर तथा अन्तिम पहर को छोड़ कर ही सोना उत्तम माना गया है । दीन, अन्धे, लूले, बहरे आदि अंगहीन की हँसी कभी नहीं करनी चाहिए ।

86. किसी भी मनुष्य के संबंध में दुर्वचन नहीं कहना चाहिए । किसी के दोष पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए । महाजनों की आज्ञा का भंग तथा राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

कुटुम्ब की पालना

87. जो परिवार के पालन-पोषण के लिए यत्न नहीं करता है, उसमें यदि सभी गुण भी हों तो भी उन गुणों से कोई प्रयोजन नहीं । वह जीता हुआ मृतक है ।

हितोपदेश

88. किसी के वश अर्थात् दासता में नहीं रहना चाहिए, सभी को स्वतंत्र बनाने का यत्न करना चाहिए । राजा मेरा मित्र है, यह जानकर, मनमानी नहीं करनी चाहिए ।

89. मूर्ख का मालिक अथवा नौकर बनने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। महात्मा जनों के विरोध की तथा अल्पज्ञानियों को प्रसन्न करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

कूट व्यवहार की निन्दा

90. कपटपूर्ण व्यवहार तथा किसी की जीविका का नाश कभी नहीं करना चाहिए। किसी के अनिष्ट का मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए।

पत्नी के वचनों की कहाँ उपेक्षा करनी चाहिए

91. माता, वधू, भरजाई और सौतेली संतान के दोष को यदि पत्नी कहे, तो उसे परीक्षा किए बिना नहीं मानना चाहिए।

विवाह में कोई क्या चाहते हैं

92. कन्या वर के रूप को पसन्द करती है, माता वर को धनवान् चाहती है, पिता वर की विद्वता को चाहता है, बन्धुजन वर के ऊँचे कुल को पसन्द करते हैं और शेष जन विवाह के समय होने वाले मिष्ठान्न में रुचि रखते हैं।

क्षण कण की उपादेयता

93. विद्या-उपार्जन के समय क्षण-क्षण का और धनोपार्जन के समय कण-कण का ध्यान रखना चाहिए। विद्या तथा धन के अभिलाषी मनुष्य को सदा एक-एक क्षण तथा एक-एक कण का परित्याग नहीं करना चाहिए।

धनोपार्जन का प्रयोजन

94. पत्नी और सन्तान के पालन-पोषण के लिए, मित्र की सहायता के लिए और दान के लिए धनोपार्जन सदा हितकर है। इन प्रयोजनों के बिना धन का तथा धन से प्राप्त भृत्यवर्ग का कोई प्रयोजन नहीं है।

विद्या धन

95. उत्तर काल में रक्षा के योग्य विद्या-धन की रक्षा करनी चाहिए। मैं सौ वर्ष तक जीता रहूँगा और धन से प्रसन्न

रहूँगा ।

96. विद्या और धन का उपार्जन पच्चीस वर्ष तक अथवा साढ़े बारह वर्ष तक अथवा सवा छः वर्ष तक अवश्य करना चाहिए ।

97. विद्या-धन सभी धनों में श्रेष्ठ है, शेष धनों का मूलभूत यह विद्या-धन है । सदा दान से यह बढ़ता है । इसके उठाने में भी कोई भार नहीं और न ही कोई इसे अपहरण कर पाता है ।

मैत्री की स्थिरता में कारण

98. जिस सुहृद के साथ प्रगाढ मैत्री स्थिर रखना अभीष्ट हो, उससे कभी धन की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए । उसके परोक्ष में गुप्त भेदों को जानने का यत्न तथा उसकी स्त्री से संभाषण नहीं करना चाहिए ।

99. उसकी न्यूनता को देखना, उसके विपरीत बोलना, उसके कार्य में सहायता न देना तथा अनिष्ट के समय उपेक्षा – ये सभी कुछ नहीं करना चाहिए ।

100. मित्र को सहायतार्थ बिना ब्याज का धन इस प्रकार देना चाहिए कि दोनों को क्लेश देने वाला न हो । साक्षी से युक्त लिखा हुआ हो तो भी पीछे न लिखे हुए के समान लिखकर धन देना चाहिए ।

दान और धर्म की महिमा

101. मैं मृत्यु के मुख में पड़ा हूँ, मेरी आयु क्षण भर के लिए भी नहीं, ऐसा विचार करते हुए बुद्धिमान का कोई भी दिन दान एवं धर्म कार्य किए बिना नहीं गुजरना चाहिए । उसे दान तथा धर्म का सदा आचरण करना चाहिए ।

अति में दोष

102. बहुत बोलने, बहुत काम में फंस जाने तथा अत्युग्र हठ का परित्याग कर देना चाहिए । 'अति' नाश का कारण है, इसलिए अति का परित्याग करना ही उचित है ।

103. बुद्धिमान को ऐसा कभी नहीं मानना चाहिए– 'मैं सबसे बड़ा हूँ, मैं सबसे अधिक ज्ञानी हूँ, जो मैं कहता हूँ, यही धर्म का सार है ।

तरुणी, धन और पुस्तक के न्यास का निषेध

104. युवा स्त्री, धन और पुस्तक को किसी के अधीन नहीं करना चाहिए । यदि इन्हें दे दिया जाए, तो बड़े भाग्य से वापस मिलती हैं, परन्तु यदि मिलती हैं तो तरुणी भ्रष्ट अवस्था में, धन (भूषणादि) टूटी-फूटी अवस्था में तथा पुस्तक कटी-फटी अवस्था में ।

बुद्धिमान का कर्त्तव्य

105. बुद्धिमान को कभी भी अभिमान से अत्यन्त कारण से अत्यधिक धन का परित्याग नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार अभिमानवश होकर अत्यधिक व्यय से अत्यन्त कार्य-सिद्धि को भी नहीं करना चाहिए ।

मित्र की क्या बात नहीं करनी चाहिए

106. बुद्धिमान को विनोद में वैसा कुछ नहीं कहना चाहिए, जिससे मित्र को लज्जित होना पड़े तथा वह दुःखी होकर मित्रता से अलग हो जाए ।

किन से बात नहीं कहनी चाहिए

107. बुद्धिमान को उस मनुष्य के साथ किसी प्रकार की बातचीत नहीं करनी चाहिए अर्थात् उसे समझाना नहीं चाहिए, जिसमें सूक्तियाँ अर्थात् मधुर भाषण तथा कठोर भाषण एक जैसा और निष्प्रयोजन हो जाता है । जैसे गायक का बहरों के सामने गाना निरर्थक हो जाता है ।

मित्र की परीक्षा

108. संबंधियों की पारस्परिक फूट में जो मित्र प्रयत्नपूर्वक उदासीनता का अवलम्बन नहीं करता, बुद्धिमान उसे मित्र

नहीं कहते ।

कठोर वचन की निन्दा

109. जन्म भर सहायता करने तथा मान-आदर दिए जाने पर भी मित्र तीखे वचनों से तत्काल शत्रु बन जाता है ।

कौन-सा गुण कहाँ उचित है

110. घोड़े में वेग, बैल में जुआ उठाने की शक्ति, मणि में चमक, राजा में क्षमा ।

111. वेश्या में हाव-भाव, गायक में मधुर स्वर, धनी में दान का स्वभाव, सैनिक में वीरता ।

112. गौओं में दुग्ध-बाहुल्य, तपस्वियों में संयम, विद्वानों में वाणी की प्रगल्भता, न्यायाधिकारियों में पक्षपात का अभाव ।

113. साक्षियों में सच्चाई, सेवकों में अनन्य भक्ति, मंत्रियों में हित का कथन, मूर्खों में मौन, स्त्रियों में पतिव्रत्य—ये सब सुभूषण हैं ।

सुखदायक घर

114. वही घर शोभा से युक्त होता है, जिसमें एक स्वामी हो, अर्थात् घर को ठीक दिशा में ले जाने वाला अनुभवी वृद्ध नेता हो; घर के परिजन, दोष, भोग और सुशिक्षित संतान से युक्त घर शोभाशाली होता है ।

दुष्ट के लक्षण

115. दूसरे की प्रगति को न सहन करने के स्वभाव वाला, दोषों का द्रष्टा, सभी की निन्दा करने वाला, द्रोह बुद्धि, अन्तः मलिन, परन्तु प्रसन्न-मुख व्यक्ति 'दुष्ट' कहा गया है ।

116. धूर्त प्रायः दूसरों को उपदेश देने के लिए सन्तों के समान अपने आपको दिखाते हैं, परन्तु वे अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सैंकड़ों बुरे कर्मों को किया करते हैं ।

सुखदायक पुत्र

117. जो माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है, उद्यमशील बनकर उनकी सेवा में लगा रहता है; सदा छाया की भाँति उनका अनुगमन करता है। धन तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए यत्न करता है।

118. सभी विद्याओं में जो प्रवीण है, वह पुत्र माता-पिता की प्रीति करने वाला होता है। जो इसके विपरीत होता है, वह दुःखदायी, दुर्गुणी और धन का नाश करने वाला होता है।

पत्नी

119. सदा पति से प्रेम करने वाली, घर के कार्यों में दक्ष, संतान के उत्पादन में समर्थ, सुन्दर आचार से युक्त, सौभाग्य से सम्पन्न यौवन वाली पत्नी पति के लिए प्रीतिकारक होती है।

माता

120. जो पुत्र के अपराधों को क्षमा कर देती है, जो पुत्र के पालन-पोषण के स्वभाव वाली है, वह माता सदा प्रीति के देने वाली है, इसके विपरीत दुःख देने वाली और कुलटा है।

पिता

121. जो पिता पुत्र की ज्ञान-प्राप्ति के लिए तथा उसे निर्वाह के योग्य बनाने के लिए यत्न करता है और पुत्र को सदा सन्मार्ग पर चलने के लिए अनुशासित करता है, वह पिता प्रीतिकारक है तथा अपने माता-पिता के ऋण से उन्मुक्त है।

मित्र

122. वही मित्रता का पात्र है, जो सदा सहायता करता है, विरुद्ध कभी नहीं कहता, सत्य और हितकर वचन बोलता है, जो आदान-प्रदान करता है।

क्या-क्या मानहानि के लिए होता है

123. नीच के साथ अधिक मेल-जोल, दूसरे के घर में नित्य जाना, जाति तथा संघ में प्रतिकूलता और दरिद्रता ये सभी बातें मान-हानि के लिए होती है ।

दुःखदायक बातें

124. मित्रों का विरोध, शत्रु की सदा स्थिर रहने वाली प्रबलता, विद्वानों की दरिद्रता और दरिद्र होने पर संतान की अधिकता—ये सभी बातें दुःख देने वाली हैं ।

दुःखदायक भर्ता

125. भर्ता सुन्दर, धनवान, विद्वान् और बलवान् भी क्यों न हो, यदि वह स्त्री से प्रणय नहीं करता, तो वह स्त्रियों के लिए सुखदायक नहीं होता ।

सुखदायक भर्ता

126. जो स्त्री से प्रणय करता है, स्त्री उसके वश में हुआ करती है । जैसे पालन तथा प्यार से बच्चा वश में आ जाता है ।

कौन क्या चाहता है

127. मधुर-मधुर रसों का लोभी, व्यभिचारी और चोर सदा एकान्त चाहते हैं । बलवान् से शत्रुता रखने वाला सदा सहायता की इच्छा करता है और वेश्या धनिकों की मित्रता की इच्छा करती है ।

128. दुष्ट राजा सदा कपट करने की इच्छा करता है, दुष्ट सेवक सदा स्वामी के धन की इच्छा करता है, ज्ञानवान सदा वास्तविकता को जानने की कामना करता है और पुजारी दम्भ, बाह्य तप और अग्नि अर्थात् यज्ञादि की कामना करता है ।

मूर्ख का लक्षण

129. मूर्ख सदा उग्र बना रहता है, कलह करता है, अधिक सोता है, नशीले पदार्थ खाता है, निकम्मे काम करता है और अपने अभीष्ट का भी नाश कर लेता है ।

सुखदायक और दुःखदायक

130. युवावस्था में निर्धनता तथा वृद्धावस्था में धन का होना। युवावस्था में पद यात्रा तथा वृद्धावस्था में सवारी से यातायात सदा सुख देने वाले होते हैं।

अच्छा क्या है

131. पृथिवी को चमड़े से ढकने की अपेक्षा पाँवों में जूता पहन लेना अच्छा है। अल्प ज्ञान के अहंकार से मूर्खता को अच्छा कहा है।

नीति वाक्य

132. सामर्थ्यवान को कभी मार्ग रोककर नहीं खड़ा होना चाहिए। राजा को भी उचित है कि उसे बाज़ार में कभी अच्छी सवारी से भी नहीं जाना चाहिए।

जल्दी बुढापा आने में कारण

133. बहुत घूमना, बहुत खाना, अधिक संभोग और अत्यधिक परिश्रम जल्दी बुढ़ापा लाने वाले हैं। इसी प्रकार सभी विद्याओं और कलाओं में अत्याधिक परिश्रम भी जल्दी बुढ़ापा लाता है।

उत्तम पुरुष

134. वह उत्तम है, जो अपने दुर्गुण सुनकर क्रोध नहीं करता, प्रत्युत प्रसन्न होता है। अपने दोष जानने के लिए यत्न करता है और सुन लेने पर उसे छोड़ देता है। अपने गुणों के श्रवण करने से वैसा ही बना रहता है, फूलता नहीं।

बिना पूछे न बोले

135. दोनों वादियों की यथार्थता को जानता हुआ भी जब तक न्यायधिकारी उसे न पूछे, उसे कुछ नहीं कहना चाहिए। क्योंकि दोनों में से जो कोई हीन अर्थात् दोषी होगा, वही शत्रु बन जाएगा।

सज्जन और दुष्ट का स्वभाव

136. थोड़ा-सा भी किया हुआ उपकार सन्त जनों के लिए महान् हो जाता है। दुष्ट मनुष्य अपने पर किए बड़े भारी उपकार को भी सरसों के दाने से तुच्छ समझता है।

हितोपदेश

137. किसी के साथ ऐसा खिलवाड़ नहीं करना चाहिए, जो झगड़े का कारण बन जाए। किसी से विनोद करते हुए भी उसे यह कभी नहीं कहना चाहिए कि क्या तेरी पत्नी व्याभिचारिणी है।

मित्र से व्यवहार

138. मित्रभाव की स्थापना के कारण किसी को भी दुर्वचन नहीं कहने चाहिएं। मित्र के सामने अपनी गोपनीय बात नहीं छिपानी चाहिए और उस मित्र की छिपाने योग्य बात की विज्ञप्ति नहीं करनी चाहिए।

हितोपदेश

139. सदा अनुभवियों से योग्य वार्तालाप करना चाहिए न कि बालकों के सदृश। दूसरे के घर में प्रविष्ट होकर महिला जन को देखना उचित नहीं अर्थात् दृष्टि नीचे रखनी चाहिए।

अध्याय 4

आश्रमियों के मुख्य धर्म

140. विद्या की प्राप्ति के लिए जीवन को तपोमय तथा नियमबद्ध बनाते हुए ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना चाहिए। सबके पालन-पोषण के हेतु गृहस्थ होना चाहिए। इन्द्रिय-दमन के लिए वानप्रस्थ और मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यासी बनना चाहिए।

पत्नी के कर्त्तव्य

141. पति के लिए पत्नी को मन, वाणी और कर्म से शुद्ध, आज्ञानुसारिणी, छाया की भांति पीछे चलने वाली, निर्मलचरित्र, हितकारी कार्यों में मित्र के समान तथा करणीय कर्मों में दासी के समान होना उचित है।

अध्याय 5

पूज्य नर

142. वह मनुष्य निःसन्देह पूजनीय है, जोकि धर्माचरण में तथा अर्थोपार्जन में समर्थ है। देश तथा काल का ठीक प्रकार से जानने वाला है। सदा संशयशील मनुष्य अच्छा नहीं होता।

पुरुष धन का दास है

143. मनुष्य धन का दास है, धन किसी का दास नहीं है। अतः सदा उद्यमशील होकर मनुष्य को धनोपार्जन के लिए यत्न करना चाहिए।

दुःखदायक क्या है?

144. शस्त्र और अस्त्र के बिना वीरता, स्त्री के बिना गृहस्थ, एक सम्मति के बिना युद्ध, ग्राहक के अभाव में कुशलता और सहाय के बिना विपदा।

प्रसादन का ढंग

145. ज्ञातिवर्ग को मैत्री से प्रसन्न रखना चाहिए। सम्पत्ति का निबटारा हो चुकने पर संबंधियों को मासिक सहायता नियत कर देने पर खुश रखना चाहिए तथा मित्रों को अपने सदृश भोगों से तथा सत्याचरण से प्रसन्न रखना चाहिए।

कौन धनी सुखी है?

146. धनवान का उपभोग सदा ब्राह्मण, अग्नि और जल क्रिया करते हैं। वह इसी प्रकार सदा सुखी रहता है। इसके विपरीत धनवान सदा दुःख का उपभोग करता है।

कौन से स्वामी तथा भृत्य श्लाघ्य हैं

147. भृत्य वही प्रशंसनीय है, जो विपदा में स्वामी का परित्याग नहीं करता। वही उत्तम स्वामी है, जो भृत्य के लिए जीवन का त्याग कर सकता है।

उत्तम, मध्यम तथा नीच का भेद

148. अपकार किये जाने पर भी उत्तम उपकार ही करता है। नीच उपकार किए जाने पर भी अपकार ही करता है। मध्यम उपकार करने पर उपकार और अपकार करने पर अपकार करता हुआ समता का ही बर्ताव चाहता है। इन तीनों से अवशिष्ट लोग स्वार्थवश उपकार तथा अपकार करते हैं।

एक साथ बहुत कार्यों के आरम्भ में दोष

149. एक समय में बहुत कार्यों का आरम्भ सुखदायक नहीं होता। आरम्भ किए हुए कार्य को समाप्ति से पहले दूसरा कार्य नहीं करना चाहिए।

शुभ कार्य

150. जिस प्रकार कार्य निर्दोष, विद्वानों के सम्मत तथा काल के गुजर जाने पर भी दुःख के न देने वाला हो सके वैसा कार्य करना चाहिए।

5. चाणक्यनीति

अध्याय-1

प्रभु प्रार्थना

1. तीनों लोकों के स्वामी विष्णु के चरणों में अपना मस्तक झुकाकार प्रणाम करके अनेक शास्त्रों से लिए गए राजनीति के संकलन का वर्णन करता हूँ ।

अच्छा व्यक्ति कौन

2. धर्म का उपदेश देने वाला, कार्य-अकार्य, शुभ-अशुभ को बताने वाला इस नीतिशास्त्र को पढ़कर जो सही रूप में इसे जानता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है ।

राजनीति : विश्व शांति के लिए–

3. मैं (चाणक्य) लोगों की भलाई की इच्छा से अर्थात् लोकहितार्थ राजनीति के उस रहस्य वाले पक्ष को प्रस्तुत करूँगा, जिसे केवल जान लेने मात्र से ही व्यक्ति स्वयं को सर्वज्ञ समझ सकता है ।

शिक्षा : सुपात्र की

4. मूर्ख शिष्य को पढ़ाने से, उपदेश देने से, दुष्ट स्त्री का भरण पोषण करने से तथा दुःखी लोगों का साथ करने से विद्वान व्यक्ति भी दुःखी होता है । साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या ।

मृत्यु के कारणों से बचें

5. दुष्ट पत्नी, शठ मित्र, उत्तर देने वाला सेवक तथा सांप वाले घर में रहना, ये मृत्यु के कारण हैं । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ।

विपत्ति में क्या करें

6. विपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए । धन से अधिक रक्षा पत्नी की करनी चाहिए । किन्तु आत्म-रक्षा का प्रश्न सम्मुख आने पर धन और पत्नी का बलिदान भी करना पड़े तो भी नहीं चूकना चाहिए ।

7. आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। लेकिन धनवान की आपत्ति क्या करेगी अर्थात् धनवान पर आपत्ति आती ही कहाँ है? तो प्रश्न उठा कि लक्ष्मी तो चंचल होती है, पता नहीं कब नष्ट हो जाए तो फिर यदि ऐसा है तो कदाचित् संचित धन भी नष्ट हो सकता है।

इन स्थानों पर न रहें

8. जिस देश में सम्मान न हो, जहाँ अपना कोई भाई-बंधु न रहता हो और जहाँ विद्या-अध्ययन संभव न हो, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

9. जहाँ कोई सेठ, वेदपाठी विद्वान् , राजा और वैद्य न हों, जहाँ कोई नदी न हो, इन पाँच स्थानों पर एक दिन भी नहीं रहना चाहिए।

10. जिस स्थान पर आजीविका न मिले, लोगों में भय, लज्जा, उदारता तथा दान देने की प्रवृत्ति न हो, ऐसी पाँच जगहों को भी मनुष्य को अपने विकास के लिए नहीं चुनना चाहिए।

पहचान समय की होती है

11. किसी महत्त्वपूर्ण कार्य पर भेजते समय सेवक की पहचान होती है। दुःख के समय में बंधु-बांधवों की, विपत्ति के समय मित्र की तथा धन नष्ट हो जाने पर पत्नी की परीक्षा होती है।

12. रोग की दशा में – जब कोई बीमार होने पर, असमय शत्रु से घिर जाने पर, राजकार्य में सहायक रूप में तथा मृत्यु पर शमशान भूमि में ले जाने वाला व्यक्ति सच्चा मित्र और बंधु है।

हाथ आई चीज न गवाएं

13. जो निश्चित् को छोड़कर अनिश्चित् का सहारा लेता है, उसका निश्चित् भी नष्ट हो जाता है। अनिश्चित् तो स्वयं नष्ट होता ही है।

विवाह संबंधी बराबरी

14. बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह रूपवती न होने पर भी कुलीन कन्या से विवाह कर ले, किन्तु नीच कुल की कन्या यदि रूपवती तथा सुशील भी हो, तो उससे विवाह न करें। क्योंकि विवाह समान कुल में ही करना चाहिए।

देख-परख कर भरोसा करें

15. लम्बे नाखून वाले हिंसक पशुओं, नदियों, बड़े-बड़े सींग वाले पशुओं, शस्त्रधारियों, स्त्रियों और राज-परिवारों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि ये कब घात कर दें, चोट पहुँचा दें कोई भरोसा नहीं।

सार को ग्रहण करें

16. विष में से अमृत तथा गंदगी में से भी सोना ले लेना चाहिए। नीच व्यक्ति से भी उत्तम विद्या ले लेनी चाहिए और दुष्ट कुल से भी स्त्री-रत्न को ले लेना चाहिए।

स्त्री पुरुष से आगे होती है

17. स्त्रियों में आहार दुगुना, लज्जा चौगुनी, साहस छह गुना तथा कामोतेजना (संभोग की इच्छा) आठ गुनी होती है।

अध्याय-2

स्त्रियों के स्वाभाविक दोष

18. झूठ बोलना, साहस, छल-कपट, मूर्खता, अत्यन्त लोभ, अपवित्रता और निर्दयता– ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं।

जीवन के सुख भाग्यशाली को मिलते हैं

19. भोज्य पदार्थ, भोजन-शक्ति, रति शक्ति, सुन्दर स्त्री, वैभव तथा दान-शक्ति, ये सब सुख किसी अल्प तपस्या का फल नहीं होते।

जीवन सुख में ही स्वर्ग है

20. जिसका पुत्र वशीभूत हो, पत्नी वेदों के मार्ग पर चलने वाली हो और जो अपने वैभव से संतुष्ट हो उसके लिए यहीं स्वर्ग है।

सार्थकता में ही संबंध का सुख

21. पुत्र वही है जो पिता का भक्त है । पिता वही है जो पोषक है मित्र वही है जो विश्वासपात्र हो । पत्नी वही है जो हृदय को आनन्दित करे ।

दुष्ट मित्र को त्याग दें

22. पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाले तथा सामने प्रिय बोलने वाले ऐसे मित्र को मुंह पर दूध रखे हुए विष के घड़े के समान त्याग देना चाहिए ।

23. दुष्ट मित्र पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और पूरी तरह मित्र पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए । कभी कुपित होने पर मित्र भी आपकी गुप्त बातें सबको बता सकता है ।

मन का भाव गुप्त ही रखें

24. मन में सोचे हुए कार्य को मुंह से बाहर नहीं निकालना चाहिए । मंत्र के समान गुप्त रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिए । गुप्त रखकर ही उस काम को करना भला समझना चाहिए ।

पराधीनता

25. मूर्खता कष्ट है, यौवन भी कष्ट है, किन्तु दूसरों के घर में रहना कष्टों का भी कष्ट है ।

साधु पुरुष

26. न प्रत्येक पर्वत पर मणि-माणिक्य ही प्राप्त होते हैं, न प्रत्येक हाथी के मस्तक से मुक्ता-मणि प्राप्त होती है । संसार में मनुष्यों की कमी न होने पर भी साधु पुरुष सब जगह नहीं मिलते । इसी प्रकार सभी वनों में चंदन के वृक्ष उपलब्ध नहीं होते ।

पुत्र के प्रति कर्तव्य

27. पुत्र के संबंध में उपदेश करते हुए कहते हैं कि बुद्धिमान लोगों का कर्तव्य है कि पुत्र को सदा अनेक प्रकार से सदाचार की शिक्षा दें । नीतिज्ञ सदाचारी पुत्र ही कुल में पूजे जाते हैं ।

28. बच्चे को न पढ़ाने वाली माता शत्रु तथा पिता वैरी के समान होते हैं। बिना पढ़ा व्यक्ति पढ़े लोगों के बीच में हंसों में कौए के समान अपमानित होता है।

29. अधिक लाड़ से अनेक दोष तथा ताड़न से गुण आते हैं। इसलिए पुत्र को और शिष्य को लालन की नहीं ताड़न की आवश्यकता होती है।

30. व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी एक श्लोक का या आधे या उसके भी आधे अथवा एक अक्षर का ही सही मनन करे। मनन, अध्ययन, दान आदि कार्य करते हुए दिन को सार्थक करना चाहिए।

अधिक मोह-माया रखना खतरनाक है

31. प्रियतम का पत्नी से वियोग, अपने लोगों से अपमानित होना, ऋण का न चुका पाना, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और धूर्त लोगों की सभा ये बातें बिना अग्नि के ही शरीर को जला देते हैं।

विनाश का कारण

32. तेज बहाव वाली नदी के किनारे लगने वाले वृक्ष दूसरे के घर में रहने वाली स्त्री मंत्रियों के बिना राजा लोग—ये सभी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

व्यक्ति का बल

33. विद्या ही ब्राह्मणों का बल है। राजा का बल सेना है। वैश्यों का बल धन है तथा सेवा करना शूद्रों का बल है।

दुनियाँ की रीति

34. यह प्रकृति का नियम है कि पुरुष के निर्धन हो जाने पर वेश्या उस पुरुष को त्याग देती है। प्रजा शक्तिहीन राजा को और पक्षी फलहीन वृक्ष को त्याग देते हैं। इसी प्रकार भोजन कर लेने पर अतिथि घर को छोड़ देता है।

35. दक्षिणा ले लेने पर ब्राह्मण यजमान को छोड़ देते हैं, विद्या प्राप्त कर लेने पर शिष्य गुरु को छोड़ देते हैं और वन में आग लग जाने पर वन के पशु उस वन को त्याग देते हैं ।

दुष्कर्मों से सचेत रहें

36. दुराचारी दुष्ट स्वभाव वाला बिना किसी कारण दूसरों को हानि पहुँचाने वाला तथा दुष्ट व्यक्ति से मित्रता रखने वाला श्रेष्ठ पुरुष भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

मित्रता बराबर की

37. समान स्तर वालों से ही मित्रता शोभा देती है । सेवा राजा की शोभा देती है । वैश्यों का व्यापार करना शोभा देता है । शुभ स्त्री घर की शोभा है ।

अध्याय - 3

दोष कहाँ नहीं है

38. किसके कुल में दोष नहीं होता? रोग किसे दुःखी नहीं करते? दुःख किसे नहीं मिलता और निरंतर सुखी कौन रहता है ।

लक्षणों से आचरण का पता लगता है

39. आचरण से व्यक्ति के कुल का परिचय मिलता है । बोली से देश का पता लगता है । आदर-सत्कार से प्रेम का तथा शरीर को देखकर व्यक्ति के भोजन का पता चलता है ।

व्यवहार कुशल बनें

40. कन्या का विवाह किसी अच्छे घर में करना चाहिए, पुत्र को पढ़ाई-लिखाई में लगा देना चाहिए, मित्र को अच्छे कार्यों में तथा शत्रु को बुराइयों में लगा देना चाहिए । यही व्यावहारिकता है और समय की मांग भी ।

दुष्ट से बचें

41. दुष्ट और सांप, इन दोनों में सांप अच्छा है, न कि दुष्ट । सांप तो एक ही बार डंसता है, किन्तु दुष्ट तो पग-पग पर डंसता रहता है ।

संगति कुलीनों की करें

42. कुलीन लोग आरम्भ से अंत तक साथ नहीं छोड़ते । वे वास्तव में संगति का धर्म निभाते हैं । इसलिए राजा लोग

कुलीनों का संग्रह करते हैं ताकि समय-समय पर सत्परामर्श मिल सके ।

सज्जनों का सम्मान करें

43. सागर की तुलना में धीर-गंभीर पुरुष को श्रेष्ठतर माना जाना चाहिए क्योंकि जिस सागर को लोग इतना गंभीर समझते हैं प्रलय आने पर वह भी अपनी मर्यादा भूल जाता है और किनारों को तोड़कर जल-थल एक कर देता है । परन्तु साधु अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति संकटों का पहाड़ टूटने पर भी श्रेष्ठ मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता ।

मूर्खों का त्याग करें

44. मूर्ख व्यक्ति को दो पैरों वाला पशु समझकर त्याग देना चाहिए क्योंकि वह अपने शब्दों से शूल के समान उसी तरह भेदता रहता है जैसे अदृश्य कांटा चुभ जाता है ।

विद्या का महत्व पहचानें

45. रूप और जीवन से सम्पन्न उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी विद्याहीन मनुष्य सुगंधहीन फूल के समान होते हैं और शोभा नहीं देते ।

सूरत से सीरत भली

46. कोयलों का रूप उनका स्वर है । पतिव्रता होना ही स्त्रियों की सुंदरता है । कुरुप लोगों का ज्ञान ही उनका रूप है तथा तपस्वियों का क्षमा भाव ही उनका रूप है ।

श्रेष्ठता को बचाएं

47. व्यक्ति को चाहिए कि कुल के लिए एक व्यक्ति को त्याग दे । ग्राम के लिए कुल को त्याग देना चाहिए । राज्य की रक्षा के लिए ग्राम को तथा आत्मरक्षा के लिए संसार को भी त्याग देना चाहिए ।

परिश्रम से ही फल मिलता है–

48. उद्यम से दरिद्रता तथा जप से पाप दूर होता है । मौन रहने से कलह और जागते रहने से भय नहीं होता ।

अति का त्याग करें

49. अधिक सुंदरता के कारण ही सीता का हरण हुआ था । अति घमंडी हो जाने पर रावण मारा गया तथा अत्यन्त दानी होने से राजा बलि को छला गया । इसलिए अति सभी जगह वर्जित है ।

वाणी में मधुरता लाएं

50. सामर्थ्यवान व्यक्ति को कोई वस्तु भारी नहीं होती । व्यापारियों के लिए कोई जगह दूर नहीं होती । विद्वान् के लिए कहीं विदेश नहीं होता । मधुर बोलने वाले का कोई पराया नहीं होता ।

गुणवान एक भी पर्याप्त है

51. गुणवान एक भी अपने गुणों का विस्तार करके नाम कमा लेता है । उनका कहना है कि वन में सुंदर खिले हुए फूलों वाला एक ही वृक्ष अपनी सुगंध से सारे वन को सुगंधित कर देता है । इसी प्रकार एक ही सुपुत्र सारे कुल का नाम ऊँचा कर देता है ।

52. एक ही सूखे वृक्ष में आग लगने पर वन जल जाता है । इसी प्रकार एक ही कुपुत्र सारे कुल को बदनाम कर देता है ।

53. जिस प्रकार अकेला चन्द्रमा रात की शोभा बढ़ा देता है, ठीक उसी प्रकार एक ही विद्वान् सज्जन पुत्र कुल को आह्लादित करता है ।

54. शोक और संताप उत्पन्न करने वाले अनेक पुत्रों के पैदा होने से क्या लाभ । कुल को सहारा देने वाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है जिसके सहारे सारा कुल विश्राम करता है ।

55. पुत्र का पांच वर्ष तक लालन करें । दस वर्ष तक ताड़न करें । सोलहवां वर्ष लग जाने पर उसके साथ मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए ।

समय की सूझ

56. उपद्रव या लड़ाई हो जाने पर भयंकर अकाल पड़ जाने पर और दुष्टों का साथ मिलने पर भाग जाने वाला व्यक्ति ही जीता है । आशय यह है कि कहीं पर भी अन्य लोगों के बीच में लड़ाई-झगड़ा, दंगा-फसाद हो जाने पर, भयंकर अकाल पड़ जाने पर और दुष्ट लोगों के सम्पर्क में आ जाने पर उस स्थान को छोड़कर भाग खड़ा होने वाला व्यक्ति अपने को बचा लेता है ।

जीवन की निष्फलता

57. जिस मनुष्य को धर्म, धन, काम-भोग, मोक्ष में एक भी वस्तु नहीं मिल पाती उसका जन्म केवल मरने के लिए ही होता है ।

लक्ष्मी का वास

58. जहाँ मूर्खों का सम्मान नहीं होता, अन्न का भंडार रहता है और पति-पत्नी में कलह नहीं हो, वहाँ लक्ष्मी स्वयं आती है ।

अध्याय - 4

कुछ चीजें भाग्य से मिलती हैं

59. आयु, कर्म, वित्त, विद्या, मृत्यु ये पाँचों वस्तुएं व्यक्ति के भाग्य में लिख दी जाती हैं, जब वह गर्भ में ही होता है ।

संतों की सेवा से फल मिलता है

60. संसार के अधिकतर पुत्र, मित्र और भाई साधु-महात्माओं, विद्वानों आदि की संगति से दूर रहते हैं । जो लोग सत्संगति करते हैं वे अपने कुल को पवित्र कर देते हैं ।

61. जैसे मछली, मादा कछुआ और चिड़िया अपने बच्चों का पालन क्रमशः देखकर ध्यान देकर तथा स्पर्श से करती है उसी प्रकार सत्संगति भी हर स्थिति में मनुष्यों का पालन करती है ।

जहाँ तक हो पुण्य कर्म करें

62. जब तक शरीर स्वस्थ है तभी तक मृत्यु भी दूर रहती है। अतः तभी आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिए। प्राणों का अंत हो जाने पर क्या करेगा? केवल पश्चाताप ही शेष रहेगा।

विद्या कामधेनु के समान होती है

63. विद्या कामधेनु के समान गुणों वाली है बुरे समय में भी फल देने वाली है प्रवास काल में माँ के समान है तथा गुप्त धन है।

गुणवान पुत्र एक ही पर्याप्त है

64. केवल एक गुणवान् और विद्वान् बेटा सैकड़ों गुणहीन, निकम्मे बेटों से अच्छा होता है। जिस प्रकार एक चांद ही रात्रि के अंधकार को दूर करता है असंख्य तारे मिलकर भी रात्रि के गहन अंधकार को दूर नहीं कर सकते उसी प्रकार एक गुणी पुत्र ही अपने कुल का नाम रोशन करता है।

मूर्ख पुत्र किस काम का

65. मूर्ख पुत्र का चिरायु होने से मर जाना अच्छा है क्योंकि ऐसे पुत्र के मरने पर एक ही बार दुःख होता है जिन्दा रहने पर वह जीवन भर जलाता रहता है।

इनसे सदा बचें

66. दुष्टों के गांव में रहना, कुलहीन की सेवा, कुभोजन, कर्कश पत्नी, मूर्ख पुत्र तथा विधवा पुत्री, ये सब व्यक्ति को बिना आग के जला डालते हैं।

जिनका उपयोग नहीं उनका होना क्या

67. उस गाय से क्या करना, जो न तो दूध देती है और न गाभिन होती है। इसी तरह उस पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ, जो न विद्वान् हो और न ईश्वर का भक्त हो।

इनसे सुख मिलता है

68. सांसारिक ताप से जलते हुए लोगों को तीन ही चीजें आराम दे सकती हैं –सन्तान, पत्नी तथा सज्जनों की संगति ।

ये बातें एक बार ही होती हैं

69. राजा लोग एक ही बार बोलते हैं पंडित भी एक ही बार बोलते हैं तथा कन्यादान भी एक ही बार होता है । ये तीनों कार्य एक-एक बार ही होते हैं ।

कब अकेले कब साथ रहें

70. तप अकेले में करना उचित होता है । पढ़ने में दो, गाने में तीन, जाते समय चार, खेत में पांच व्यक्ति तथा युद्ध में अनेक व्यक्ति होने चाहिएं ।

पतिव्रता ही पत्नी है–

71. वही पत्नी है जो पवित्र और कुशल हो । वही पत्नी है जो पतिव्रता हो । वही पत्नी है जिसे अपने पति से प्रीति हो । वह पत्नी है जो पति से सत्य बोले ।

निर्धनता अभिशाप है

72. पुत्रहीन के लिए घर सूना हो जाता है । जिसके भाई न हो उसके लिए दिशाएं सूनी हो जाती हैं, मूर्ख का हृदय सूना होता है, और निर्धन का तो सब कुछ सूना हो जाता है ।

ज्ञान का अभ्यास भी करें

73. जिस प्रकार बढ़िया-से-बढ़िया भोजन बदहजमी में लाभ करने के स्थान पर हानि पहुँचाता है और विष का काम करता है, उसी प्रकार निरंतर अभ्यास न रखने से शास्त्रवान भी मनुष्य के लिए घातक विष के समान हो जाता है । जो व्यक्ति निर्धन व दरिद्र है, उसके लिए किसी भी प्रकार की सभाएं, उत्सव विष के समान हैं ।

इनको त्याग देना ही अच्छा है

74. धर्म में यदि दया न हो तो उसे त्याग देना चाहिए । विद्याहीन गुरु को, क्रोधी पत्नी को तथा स्नेहहीन बान्धवों को भी त्याग देना चाहिए ।

बुढ़ापे के लक्षण

75. रास्ता मनुष्य का, बांधा जाना घोड़े का, मैथुन न करना स्त्री का तथा धूप में सूखना वस्त्र का बुढ़ापा है ।

काम से पहले विचार कर लें

76. कैसा समय है? कौन मित्र है? कैसा स्थान है? आय-व्यय क्या है? मैं किसकी और मेरी क्या शक्ति है? इसे बार-बार सोचना चाहिए ।

माता-पिता के भिन्न रूप

77. जन्म देने वाला, उपनयन संस्कार करने वाला, विद्या देने वाला, अन्नदाता तथा भय से रक्षा करने वाला ये पांच प्रकार के पिता होते हैं ।

माता

78. राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता तथा अपनी माता– ये पाँच प्रकार का माताएं होती हैं ।

अध्याय 5

अतिथि श्रेष्ठ होता है

79. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णों का गुरु अग्नि है । ब्राह्मण अपने अतिरिक्त सभी वर्णों का गुरु है । स्त्रियों का गुरु पति है । घर में आया हुआ अतिथि सभी का गुरु होता है ।

पुरुष की परख गुणों से होती है

80. घिसने, काटने, तपाने और पीटने इन चार प्रकारों से जैसे सोने का परीक्षण होता है । इसी प्रकार त्याग, शील, गुण एवं कर्मों से पुरुष की परीक्षा होती है ।

संकट का सम्मान करें

81. आपत्तियों और संकटों से तभी तक डरना चाहिए जब तक वे दूर हैं, परंतु वे संकट सिर पर आ जाएं तो उस पर बिना

शंका किए मुकाबला करना चाहिए। उन्हें दूर करने का उपाय करना चाहिए।

दो लोगों का स्वभाव एक-सा नहीं होता

82. एक ही ग्रह-नक्षत्र में जन्म लेने पर भी दो लोगों का स्वभाव एक समान नहीं होता। उदाहरण के लिए वैर और कांटों को देखा जा सकता है।

स्पष्टवादी बनें

83. विरक्त व्यक्ति किसी विषय का अधिकारी नहीं होता, जो व्यक्ति कामी नहीं होता, उसे बनावटी-शृंगार की आवश्यकता नहीं होती। विद्वान् व्यक्ति प्रिय नहीं बोलता तथा स्पष्ट बोलने वाला ठग नहीं होता।

इनमें द्वेष भावना होती है

84. मूर्ख पीड़ितों से, निर्धन धनियों से, वेश्याएं कुलवधुओं से तथा विधवाएं सुहागिनों से द्वेष करती हैं।

इनसे ये चीजें नष्ट हो जाती हैं

85. आलस्य से विद्या नष्ट हो जाती है। दूसरे के हाथ में जाने से धन नष्ट हो जाता है। कम बीज से खेत तथा बिना सेनापति के सेना नष्ट हो जाती है।

इनसे गुणों की पहचान होती है

86. अभ्यास से विद्या का शील-स्वभाव से कुल का गुणों से श्रेष्ठता का तथा आँखों से क्रोध का पता लग जाता है।

कौन किसकी रक्षा करता है

87. घर के रक्षाकारक तत्वों से परिचित कराते हुए कहते हैं कि धन से धर्म की, योग से विद्या की, मृदुता से राजा की तथा अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है।

मूर्ख का त्याग करें

88. जो लोग वेदों को, पांडित्य को, शास्त्रों को, सदाचार को तथा शांत मनुष्य को बदनाम करते हैं, वे बेकार कष्ट करते हैं ।

89. दान दरिद्रता को नष्ट कर देता है । शील स्वभाव से दुःखों का नाश हो जाता है । बुद्धि अज्ञान को नष्ट कर देती है तथा भावना से भय का नाश हो जाता है ।

आत्मा को पहचानें

90. काम के समान व्याधि नहीं है । मोह अज्ञान के समान कोई शत्रु नहीं है । क्रोध के समान कोई आग नहीं है तथा ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है ।

मनुष्य अकेला होता है

91. व्यक्ति संसार में अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मृत्यु को प्राप्त करता है, अकेला ही शुभ-अशुभ कर्मों का भोग करता है, अकेला ही नरक में पड़ता है तथा अकेला ही परमगति को भी प्राप्त करता है ।

संसार को तिनके के समान समझें

92. ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग, वीर को अपना जीवन, संयमी को स्त्री तथा त्यागी को सारा संसार तिनके के समान लगता है ।

मित्र के भिन्न रूप

93. घर से बाहर विदेश में रहने पर विद्या मित्र होती है । रोगी के लिए दवा मित्र होती है तथा मृत्यु के बाद व्यक्ति का धर्म ही उसका मित्र होता है । इस प्रकार हर प्रकार से मित्र की परवाह करनी चाहिए और समयानुसार मित्र-विचार करना ही श्रेयस्कर है ।

कौन कब बेकार है

94. समुद्र में वर्षा व्यर्थ है । तृप्त को भोजन कराना व्यर्थ है । धनी को दान देना व्यर्थ है और दिन में दीपक जलाना व्यर्थ है ।

प्रिय वस्तुएं

95. बादल के समान कोई जल नहीं होता। अपने बल के समान कोई बल नहीं होता। आँखों के समान कोई ज्योति नहीं होती और अन्न के समान कोई प्रिय वस्तु नहीं होती।

जो सामने न हो उससे क्या लगाव

96. निर्धन व्यक्ति धन की कामना करते हैं और पशु बोलने की शक्ति चाहते हैं। मनुष्य स्वर्ग की इच्छा करता है और स्वर्ग में रहने वाले देवता मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा करते हैं।

97. सत्य ही पृथ्वी को धारण करता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य से ही वायु बहती है। सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है।

धर्म ही अटल है

98. लक्ष्मी चंचल है। प्राण, जीवन, शरीर सब कुछ चंचल और नाशवान है। संसार में केवल धर्म ही अटल है।

इन्हें धूर्त मानें

99. पुरुषों में नाई, पक्षियों में कौआ, चौपायों में सियार तथा स्त्रियों में मालिन धूर्त होती है।

अध्याय-6

सुनना भी चाहिए

100. सुनकर ही मनुष्य को अपने धर्म का ज्ञान होता है। सुनकर ही वह दुर्बुद्धि का त्याग करता है। सुनकर ही उसे ज्ञान प्राप्त होता है और सुनकर ही मोक्ष मिलता है।

चंडाल कौआ

101. पक्षियों में कौआ, पशुओं में कुत्ता, मुनियों में पापी तथा निन्दक सभी प्राणियों में चांडाल होता है।

इनसे शुद्धि होती है

102. कांसा भस्म से शुद्ध होता है, तांबा अम्ल से, नारी रजस्वला होने से तथा नदी अपने वेग से शुद्ध होती है ।

भ्रमण आवश्यक है

103. भ्रमण करता हुआ राजा पूजा जाता है । भ्रमण करता हुआ ब्राह्मण पूजा जाता है । भ्रमण करता हुआ योगी पूजा जाता है और भ्रमण करती हुई स्त्री नष्ट हो जाती है ।

धन का प्रभाव

104. जिस व्यक्ति के पास पैसा है लोग स्वतः ही उसके मित्र बन जाते हैं । बंधु-बांधव भी उसे आ घेरते हैं । जो धनवान है उसी को आज के युग में विद्वान् और सम्मानित व्यक्ति माना जाता है । धनवान व्यक्ति को ही विद्वान् और ज्ञानवान भी समझा जाता है ।

बुद्धि भाग्य की अनुगामी होती है

105. मनुष्य जैसा भाग्य लेकर आता है उसकी बुद्धि भी उसी समान बन जाती है । कार्य-व्यापार भी उसी के अनुरूप मिलता है । उसके सहयोगी, संगी-साथी भी उसके भाग्य के अनुरूप ही होते हैं । सारा क्रियाकलाप भाग्यानुसार ही संचालित होता है ।

106. काल ही प्राणियों को निगल जाता है । काल सृष्टि का विनाश कर देता है । यह प्राणियों के सो जाने पर भी उनमें विद्यमान रहता है । इसका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता ।

जब कुछ दिखाई नहीं देता

107. जन्मांध कुछ नहीं देख सकता । ऐसे ही कामांध और नशे में पागल बना व्यक्ति भी कुछ नहीं देखता । स्वार्थी व्यक्ति भी किसी में कोई दोष नहीं देखता ।

कर्म का प्रभाव

108. प्राणी स्वयं कर्म करता है और स्वयं उसका फल भोगता है। स्वयं संसार में भटकता है और स्वयं इससे मुक्त हो जाता है।

109. राष्ट्र द्वारा किए गए पाप को राजा भोगता है। राजा के पाप को उसका पुरोहित, पत्नी के पाप को पति तथा शिष्य के पाप को गुरु भोगता है।

शत्रु कौन

110. ऋणी पिता, व्याभिचारिणी माता, रूपवती पत्नी और मूर्ख पुत्र शत्रु होते हैं।

इन्हें वश में करें

111. लोभी को धन से, घमंडी को हाथ जोड़ कर, मूर्ख को उपदेश देकर तथा विद्वान् को सत्य से वश में कर लेना चाहिए।

दुष्टों से बचें

112. दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा सुखी कैसे रह सकती है। दुष्ट मित्र से आनंद कैसे मिल सकता है। दुष्ट पत्नी से घर में सुख कैसे हो सकता है तथा दुष्ट-मूर्ख शिष्य को पढ़ाने से यश कैसे मिल सकता है।

सीख किसी से भी ले लें

113. सिंह से एक, बगुले से दो, गधे से तीन, मुर्गे से चार, कौए से पाँच, कुत्ते से छह बातें सीखनी चाहिएं।

सिंह से सीख

114. छोटा हो या बड़ा जो भी काम करना चाहें, उसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर करें।

बगुले से सीख

115. बगुले के समान इन्द्रियों को वश में करके देश, काल एवं बल को जानकर विद्वान् अपना कार्य सफल करें।

गधे से सीख

116. विद्वान् व्यक्तियों को चाहिए कि वे गधे से तीन गुण सीखें। जिस प्रकार अत्याधिक थका होने पर भी वह बोझ ढोता रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति को भी आलस्य न करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति और सिद्धि के लिए सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए। कर्तव्य पथ से कभी विमुख नहीं होना चाहिए।

मुर्गे से सीख

117. समय पर जागना, लड़ना, भाइयों को भगा देना और उनका हिस्सा झपट कर खा जाना, ये चार बातें मुर्गे से सीखें।

कौए से

118. छिपकर मैथुन करना, समय-समय पर संग्रह करना, सावधान रहना, किसी पर विश्वास न करना, आवाज़ देकर औरों को भी इकट्ठा कर लेना, ये पाँच गुण कौए से सीखें।

कुत्ते से

119. अधिक भूखा होने पर थोड़े में ही संतोष कर लेना, गहरी नींद में होने पर भी सतर्क रहना, स्वामिभक्त होना और वीरता ये छह गुण कुत्ते से सीखने चाहिएं।

शिक्षा संबल बनाती है

120. जो मनुष्य इन बीस गुणों को अपने जीवन में धारण करेगा, वह सब कार्यों और सब अवस्थाओं में विजयी होगा।

अध्याय -7

मन की बात मन में रखें

121. धन का नाश हो जाने पर, मन के दुःखी होने पर पत्नी के चाल-चलन का पता लगने पर, नीच व्यक्ति से कुछ घटिया बातें सुन लेने पर तथा स्वयं कहीं से अपमानित होने पर अपने मन की बातों को किसी को नहीं बताना चाहिए।

कहाँ लज्जा न करें

122. धन और अनाज के लेन-देन, विद्या प्राप्त करते समय, भोजन तथा आपसी व्यवहार में लज्जा न करने वाला सुखी रहता है ।

संतोष बड़ी चीज है

123. संतोष के अमृत से तृप्त व्यक्तियों को जो सुख और शांति मिलती है, वह सुख-शांति धन के पीछे इधर-उधर भागने वालों को नहीं मिलती ।

124. व्यक्ति को अपनी स्त्री से संतोष करना चाहिए । जो भोजन प्राप्त हो जाए उसी से संतोष करना चाहिए । व्यक्ति को असंतोष में खेद या दुःख नहीं करना चाहिए । इसके विपरीत शास्त्रों के अध्ययन, प्रभु के नाम का स्मरण तथा दान-कार्य में कभी संतोष नहीं करना चाहिए । ये तीनों बातें अधिक से अधिक करने की इच्छा रखनी चाहिएं ।

इनसे बचें

125. दो ब्राह्मणों के बीच से, ब्राह्मण और आग के बीच से, मालिक और नौकर के बीच से, पति और पत्नी के बीच से तथा हल और बैल के बीच से नहीं गुजरना चाहिए ।

126. आग, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुंआरी कन्या, बूढ़े लोग तथा बच्चों को पैर से नहीं छूना चाहिए । ऐसा करना असभ्यता है ।

127. बैलगाड़ी से बचने के लिए पांच हाथ, घोड़े से बचने के लिए दस हाथ और हाथी से बचने के लिए सौ हाथ दूर रहना चाहिए । किन्तु दुष्ट व्यक्ति से बचने के लिए तो देश भी छोड़ा जा सकता है ।

128. हाथी को अंकुश से, घोड़े को हाथ से, सींगों वाले पशुओं को हाथ से अथवा लकड़ी से तथा दुष्ट को खड्क हाथ में लेकर पीटा जाता है ।

129. ब्राह्मण तो भोजन से, मोर बादलों के गरजने से, सज्जन दूसरों की सम्पन्नता से परन्तु दुष्ट तो दूसरे की विपत्ति से प्रसन्न होते हैं ।

130. बलवान शत्रु को उसके अनुकूल चलकर, दुष्ट को उसके प्रतिकूल चलकर तथा समान बल वाले शत्रु को विनय से या बल से वश में करना चाहिए ।

यौवन ही स्त्रियों का बल है

131. बाजुओं की शक्ति वाले राजा बलवान होते हैं । ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण ही बलवान माना जाता है । सुंदरता, यौवन और मधुरता ही स्त्रियों का श्रेष्ठ बल है ।

132. व्यक्ति को अधिक सीधा नहीं होना चाहिए । जंगल में जाकर देखने पर पता लगता है कि सीधे वृक्ष काट लिये जाते हैं, जबकि टेढ़े मेढ़े वृक्ष छोड़ दिये जाते हैं ।

हंस के समान न बरतें

133. जिस तालाब में पानी ज्यादा होता है हंस वहीं निवास करते हैं । यदि वहाँ का पानी सूख जाता है तो हंस भी वहाँ से चले जाते हैं । अतः आवश्यकता के अनुरूप ही आश्रय लें ।

अर्जित धन का त्याग करते रहें

134. तालाब के जल को स्वच्छ रखने के लिए उसका बहते रहना आवश्यक है । इसी प्रकार अर्जित धन का त्याग करते रहना ही उसकी रक्षा है ।

सत्कर्म में ही महानता है

135. दान देने में रुचि, मधुर वाणी, देवताओं की पूजा तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट रखना । इन चार लक्षणों वाला व्यक्ति इस लोक में कोई स्वर्ग की आत्मा होता है ।

दुष्कर्मी नरक भोगते हैं

136. अत्यंत क्रोध, कटु वाणी, दरिद्रता, स्वजनों से वैर, नीच लोगों का साथ, कुलहीन की सेवा-नरक की आत्माओं के यही लक्षण होते हैं ।

137. यदि कोई सिंह की गुफा में जाए, तो उसे वहाँ हाथी के कपोल का मोती प्राप्त होता है । यदि वही व्यक्ति गीदड़ की मांद में जाए, तो उसे बछड़े की पूंछ तथा गधे के चमड़े का टुकड़ा ही मिलेगा ।

विद्या बिना जीवन बेकार है

138. जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ से न तो उसके गुप्त अंग छिपते हैं और न ही वह पूंछ मच्छरों को काटने से रोक सकती है, इसी प्रकार विद्या से रहित जीवन भी व्यर्थ है। क्योंकि विद्याविहीन मनुष्य मूर्ख होने के कारण न अपनी रक्षा कर सकता है न अपना भरण-पोषण ।

सबसे बड़ी शुद्धता है

139. मन, वाणी को पवित्र रखना, इन्द्रियों का निग्रह, सभी प्राणियों पर दया करना और दूसरों का उपकार करना सबसे बड़ी शुद्धता है ।

शरीर में आत्मा देखें

140. पुष्प में गंध, तिलों में तेल, काष्ट में अग्नि, दूध में घी तथा गन्ने में गुड़ की भाँति विवेक से शरीर में आत्मा को देखो ।

अध्याय-8

सम्मान ही महापुरुषों का धन है

141. अधम धन की इच्छा करते हैं, मध्यम धन और मान चाहते हैं, परन्तु उत्तम केवल मान ही चाहते हैं । महापुरुषों का धन सम्मान ही है ।

दान का कोई समय नहीं

142. ईख, जल, दूध, मूल, पान, फल और औषधि को खा लेने के बाद भी स्नान, दान आदि कार्य किए जा सकते हैं ।

यथा अन्न तथा संतान

143. दीपक अंधकार को खाता है और काजल पैदा करता है। अतः जो नित्य जैसे अन्न खाता है वह वैसी ही संतान को जन्म देता है।

सबसे बड़ा नीच

144. तत्वदर्शी विद्वानों ने कहा है कि हज़ार चांडालों के बराबर एक यवन होता है। यवन से नीच कोई नहीं होता।

धन के सदुपयोग

145. बुद्धिमान ! गुणी लोगों को ही धन दो, अगुणी लोगों को कभी नहीं। बादल सागर से पानी लेकर मधुर जल की वर्षा करता है। इससे पृथ्वी के चराचर प्राणी जीवित रहते हैं। फिर यही जल करोड़ों गुना अधिक होकर समुद्र में ही चला जाता है।

स्नान से शुद्धता

146. तेल लगाने पर, चिता का धुआं लगने पर, मैथुन करने पर तथा बाल कटाने पर जब तक मनुष्य स्नान नहीं कर लेता तब तक वह चांडाल होता है।

पानी एक औषधि है

147. भोजन न पचने पर जल औषधि के समान होता है। भोजन करते समय जल अमृत है तथा भोजन के बाद विष का काम करता है।

ज्ञान को व्यवहार में लाएं

148. व्यवहार के बिना ज्ञान नष्ट हो जाता है। अज्ञान से मनुष्य का नाश हो जाता है। सेनापति के बिना सेना तथा बिना पति के स्त्री नष्ट हो जाती है।

इसे विडम्बना ही समझें

149. बुढ़ापे में पत्नी की मृत्यु, धन का भाइयों के हाथ में चला जाना, भोजन के लिए भी पराधीनता, इसे पुरुष के लिए दुःखों का पहाड़ टूट पड़ना ही समझे।

शुभ कर्म करें

150. अग्निहोत्र, यज्ञादि के बिना वेदों का अध्ययन निरर्थक है तथा दान के बिना यज्ञादि शुभ कर्म सम्पन्न नहीं होते, जिसके बिना यज्ञ पूर्ण ही नहीं माना जाता, किन्तु यदि दान बिना श्रद्धा-भाव के केवल दिखलावे के लिए हो तो उससे कभी अभीष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

भावना में ही भगवान् है

151. काष्ठ, पाषाण या धातु की मूर्तियों की भी भावना और श्रद्धा से उपासना करने पर भगवान् की कृपा से सिद्धि मिल जाती है ।

152. परमात्मा न काष्ठ में है, न मिट्टी में, न मूर्ति में । वह केवल भावना में रहता है । अतः भावना ही मुख्य है ।

शांति ही तप है

153. शांति के समान कोई तपस्या नहीं है, संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बढ़कर कोई व्याधि नहीं है और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है ।

संतोष बड़ी चीज है

154. क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और संतोष नन्दनवन है ।

इनसे शोभा बढ़ती है

155. गुण रूप की शोभा बढ़ाते हैं, शील-स्वभाव कुल की शोभा बढ़ाता है, सिद्धि विद्या की शोभा बढ़ाती है और भोग करना धन की शोभा बढ़ाता है ।

दुर्गुण सद्गुणों को खा जाते हैं

156. गुणहीन का रूप, दुराचारी का कुल तथा अयोग्य व्यक्ति की विद्या नष्ट हो जाती है । धन का भोग न करने से धन नष्ट हो जाता है ।

इन्हें शुद्ध करें

157. भूमिगत जल शुद्ध होता है, पतिव्रता स्त्री शुद्ध होती है, प्रजा का कल्याण करने वाला राजा शुद्ध होता है तथा संतोषी ब्राह्मण शुद्ध होता है ।

दुर्गुणों का दुष्प्रभाव

158. इस तरह देखें तो असंतुष्ट ब्राह्मण तथा संतुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं। लज्जा करने वाली वेश्या तथा निर्लज्ज कुलीन घर की बहू नष्ट हो जाती है।

विद्वान सब जगह पूजे जाते हैं

159. विद्याहीन होने पर विशाल कुल का क्या करना? विद्वान् नीच कुल का भी हो, तो देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है।

160. विद्वान् की लोक में प्रशंसा होती है, विद्वान् को सर्वत्र गौरव मिलता है, विद्या से सब कुछ प्राप्त होता है और विद्या की सर्वत्र पूजा होती है।

161. मांसाहारी, शराबी तथा मूर्ख पुरुष के रूप में पशु है। इनके भार से पृथ्वी दबी जा रही है।

इनसे हानि ही होती है

162. अन्नहीन राजा राष्ट्र को नष्ट कर देता है। मंत्रहीन ऋत्विज तथा दान न देने वाला यजमान भी राष्ट्र को नष्ट करते हैं। इस प्रकार के ऋत्विजों से यज्ञ कराना और ऐसे यजमान का होना फिर इनका यज्ञ करना राष्ट्र के साथ शत्रुता है।

अध्याय-9

मोक्ष

163. हे प्रिय! यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष समझकर इनका त्याग कर दो। क्षमा, आर्जव (सरलता), दया, पवित्रता, सत्य आदि गुणों का अमृत के समान पान करो।

164. जो व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे की बातों को अन्य लोगों को बता देते हैं वे बांबी के अन्दर के सांप के समान नष्ट हो जाते हैं।

विडम्बना

165. सोने में सुगन्ध, गन्ने में फल, चंदन में फूल नहीं होते। विद्वान् धनी नहीं होता और राजा दीर्घजीवी नहीं होते। क्या ब्रह्मा को पहले किसी ने यह बुद्धि नहीं दी।

सबसे बड़ा सुख

166. सभी औषधियों में अमृत प्रधान हैं सभी सुखों में भोजन प्रधान है। सभी इन्द्रियों में आँखें मुख्य हैं। सभी अंगों में सिर महत्वपूर्ण है।

विद्या का सम्मान

167. आकाश में न तो कोई दूत ही जा सकता है, और न उससे कोई वार्ता ही हो सकती है, न तो पहले से किसी ने बताया है, और न ही वहाँ किसी से मिल ही सकते हैं। फिर भी विद्वान् लोग सूर्य और चन्द्र-ग्रहण के विषय में पहले ही बता देते हैं। ऐसे लोगों को कौन विद्वान् नहीं कहेगा।

इन्हें सोने न दें

168. विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूख से दुःखी, भयभीत, भंडारी, द्वारपाल इन सातों को सोते हुए से जगा देना चाहिए।

169. सांप, राजा, शेर, बरै (ततैया), बच्चा, दूसरे का कुत्ता तथा मूर्ख इनको सोए से नहीं जगाना चाहिए।

इनसे कोई हानि नहीं

170. धन के लिए वेदों का अध्ययन करने वाला, शूद्रों का अन्न खाने वाला ब्राह्मण विषहीन सांप के समान है, ऐसे ब्राह्मण का क्या करेंगे।

इनसे न डरें

171. जिसके नाराज होने पर कोई भय नहीं होता और न प्रसन्न होने पर धन ही मिलता है। जो किसी को दंड नहीं दे सकता तथा न किसी पर कृपा कर सकता है, ऐसा व्यक्ति नाराज होने पर क्या लेगा?

आडम्बर भी आवश्यक है

172. विषहीन सांप को भी अपने फन को फैलाना ही चाहिए। विष हो या न हो। इससे लोगों को भय तो होता ही है।

महापुरुषों का जीवन

173. विद्वानों का प्रातःकाल का समय जुए के प्रसंग (महाभारत की कथा) में बीतता है। दोपहर का समय स्त्री-प्रसंग (रामायण की कथा) में बीतता है, रात्रि में उनका समय चोर-प्रसंग (कृष्ण-कथा) में बीतता है। यही महान् पुरुषों की जीवनचर्या होती है।

सौंदर्य ह्रास

174. अपने हाथ से गुंथी माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन तथा स्वयं अपने हाथों से लिखा स्तोत्र इन्द्र की शोभा को भी जीत लेते हैं।

मर्दन

175. ईख, तिल, शूद्र, पत्नी, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही तथा ताम्बूल (पान) इनके मर्दन से ही गुण बढ़ते हैं।

उपचार गुण

176. धीरज से निर्धनता भी सुंदर लगती है। साफ रहने पर मामूली वस्त्र भी अच्छे लगते हैं। गर्म किए जाने पर बासी भोजन भी सुंदर जान पड़ता है और शील स्वभाव से कुरुपता भी सुंदर लगती है।

अध्याय-10

विद्या अर्थ से बड़ा धन

177. धनहीन व्यक्ति हीन नहीं कहा जाता। उसे धनी ही समझना चाहिए। जो विद्यारत्न से हीन है, वस्तुतः वह सभी वस्तुओं से हीन है।

सोच विचार कर कर्म करें

178. आँख से अच्छी तरह देख कर पांव रखना चाहिए। जल वस्त्र से छानकर पीना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार ही बात कहनी चाहिए तथा जिस काम को करने की मन आज्ञा दे, वही करना चाहिए।

179. यदि सुखों की इच्छा है, तो विद्या त्याग दो और यदि विद्या की इच्छा है, तो सुखों का त्याग कर दो। सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ तथा विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ।

180. कवि क्या नहीं देखते? स्त्रियां क्या नहीं करतीं? शराबी क्या नहीं बकते? तथा कौए क्या नहीं खाते?

181. भाग्य ग़रीब को राजा तथा राजा को ग़रीब बना देता है धनी को निर्धन तथा निर्धन को धनी बना देता है अर्थात् भाग्य बड़ा बलवान होता है।

लोभी से कुछ न मांगें

182. लोभी व्यक्तियों के लिए भीख, चन्दा तथा दान मांगने वाले व्यक्ति शत्रुरूप होते हैं क्योंकि मांगने वाले को देने के लिए उन्हें अपनी गांठ के धन को छोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार मूर्खों को भी समझाने-बुझाने वाला व्यक्ति अपना दुश्मन लगता है क्योंकि वह उनकी मूर्खता का समर्थन नहीं करता। दुराचारिणी स्त्रियों के लिए पति ही उनका शत्रु होता है और चोर चन्द्रमा को अपना शत्रु समझता है।

गुणहीन नर पशु समान

183. जिनमें विद्या, तपस्या, दान देना, शील, गुण तथा धर्म में से कुछ भी नहीं है, वे मनुष्य पृथ्वी पर भार हैं। वे मनुष्य के रूप में पशु है, जो मनुष्यों के बीच में घूमते रहते हैं।

184. जो व्यक्ति अंदर से खोखले हैं और उनके भीतर समझने की शक्ति के अभाव के कारण शायद चाहते हुए भी कुछ समझ नहीं पाते। जैसे मलयांचल पर उगने पर भी तथा चन्दन का साथ रहने पर भी बांस सुगन्धित नहीं हो जाते, ऐसे ही विवेकहीन व्यक्तियों पर भी सज्जनों के संग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

185. जो लोग शास्त्र को समझने की बुद्धि नहीं रखते शास्त्र उनका कैसे और क्या कल्याण कर सकता है? जैसे जिसके दोनों नेत्रों में ज्योति ही नहीं है जो जन्म से अंधा है वह दर्पण में अपना मुख किस प्रकार देख सकता है? अतः जिस प्रकार दर्पण अंधे व्यक्ति के लिए किसी काम का नहीं तो इसमें दर्पण को कोई दोष नहीं दिया जा सकता।

186. मल का त्याग करने वाली इन्द्रिय को चाहे जितनी बार भी स्वच्छ किया जाए, साबुन-पानी से सैकड़ों बार धोया जाए फिर भी वह स्पर्श करने योग्य नहीं बन पाती, उसी प्रकार दुर्जन को समझाया-बुझाया जाए वह सज्जन नहीं बन सकता।

187. साधुओं-महात्माओं से शत्रुता करने पर मृत्यु होती है। शत्रु से द्वेष करने पर धन का नाश होता है। राजा से द्वेष-शत्रुता करने पर सर्वनाश हो जाता है और ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल का नाश होता है।

निर्धनता अभिशाप है

188. मनुष्य हिंसक जीवों—बाघ, हाथी और सिंह जैसे भयंकर जीवों से घिरे हुए वन में रह ले, वृक्ष पर घर बनाकर, फल-पत्ते खाकर निर्वाह कर ले, धरती पर घास-फूस बिछाकर सो ले और वृक्षों की छाल को ओढ़कर शरीर को ढक ले। परन्तु धनहीन होने पर अपने संबंधियों के साथ कभी न रहे, क्योंकि इससे उसे अपमान और उपेक्षा का जो कड़वा घूंट पीना पड़ता है वह सर्वथा असह्य होता है।

ब्राह्मण धर्म

189. विप्र वृक्ष है, संन्ध्या उसकी जड़ है, वेद उसकी शाखाएं हैं और धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं, इसलिए जड़ की हर संभव रक्षा करनी चाहिए। जड़ के टूट जाने पर न तो शाखाएं रहती हैं और न पत्ते अर्थात् संन्ध्या वंदना अवश्य करनी चाहिए।

घर में त्रैलोक्य सुख

190. जिस मनुष्य की माँ लक्ष्मी के समान है, पिता विष्णु के समान है और भाई-बंधु विष्णु के भक्त हैं, उसके लिए अपना घर तीनों लोकों के समान है ।

भावुकता से बचें

191. एक ही वृक्ष पर बैठे हुए अनेक रंग के पक्षी प्रातःकाल अलग-अलग दिशाओं को चले जाते हैं । इसमें कोई नई बात नहीं है । उसी प्रकार परिवार के सभी सदस्य परिवार-रूपी वृक्ष पर आ बैठते हैं और समय आने पर चल देते हैं । इसमें दुःख या निराशा क्यों ?

बुद्धि ही बल है

192. जिस व्यक्ति के पास बुद्धि होती है बल भी उसी के पास होता है । बुद्धिहीन का तो बल भी निरर्थक है क्योंकि बुद्धि के बल पर ही वह उसका प्रयोग कर सकता है अन्यथा नहीं । बुद्धि के बल पर ही एक बुद्धिमान खरगोश ने अहंकारी सिंह को वन के कुएं में गिराकर मार डाला था ।

सब ईश्वर की माया है

193. मुझे जीवन में क्या चिन्ता, यदि हरि को विश्वम्भर कहा जाए । यदि ऐसा न होता तो बच्चे के जीवन के लिए माता के स्तनों में दूध कैसे हो जाता । यही समझकर हे यदुपति ! लक्ष्मीपति ! मैं आपके चरणों का ध्यान करता हुआ समय व्यतीत करता हूँ ।

194. संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान होने पर भी मैं अन्य भाषाओं को सीखना चाहता हूँ । स्वर्ग में देवताओं के पास पीने को अमृत होता है फिर भी वे अप्सराओं के अधरों का रस पीना चाहते हैं ।

घी सबसे बड़ी शक्ति

195. साधारण अनाज से आटे में दस गुनी शक्ति है । आटे से दस गुनी शक्ति दूध में है । दूध से भी दस गुनी अधिक शक्ति घी में है ।

चिन्ता चिता समान

196. शोक से रोग बढ़ते हैं । दूध से शरीर बढ़ता है । घी से वीर्य बढ़ता है । मांस से मांस बढ़ता है ।

अध्याय-11

संस्कार का प्रभाव

197. दान देने की आदत, प्रिय बोलना, धीरज तथा उचित ज्ञान—ये चार व्यक्ति के सहज गुण हैं, जो अभ्यास में नहीं आते ।

अपना वर्ग

198. अपने वर्ग को छोड़कर दूसरे वर्ग का सहारा लेने वाला व्यक्ति उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे अधर्म से एक राज्य नष्ट हो जाता है ।

गुण ही बल है

199. स्थूल शरीर वाला होने पर भी हाथी अकुंश से वश में किया जाता है तो क्या अंकुश हाथी के बराबर होता है? दीपक जलने पर घने अंधकार को दूर कर देता है, तो क्या अंधकार दीपक के ही बराबर होता है । वज्र के आघातों से पहाड़ टूट कर गिर पड़ते हैं, तो क्या पहाड़ वज्र के ही बराबर होते हैं? नहीं जिसमें तेज होता है वही बलवान् होता है । मोटा-ताजा होने से कोई लाभ नहीं होता ।

200. कलियुग के दस वर्ष बीत जाने पर भगवान् पृथ्वी को छोड़ देते हैं । इससे आधे समय में गंगा अपने जल को छोड़ देती है । इसके भी आधे समय में ग्राम देवता पृथ्वी को छोड़ देते हैं ।

यथा गुण तथा प्रवृत्ति

201. गृहासक्त को विद्या प्राप्त नहीं होती। मांस खाने वाले में दया नहीं होती। धन के लोभी में सत्य तथा स्त्रैण में पवित्रता का होना असम्भव है।

आदत नहीं बदलती

202. दुष्ट को सज्जन नहीं बनाया जा सकता। दूध और घी से नीम को जड़ से चोटी तक सींचे जाने पर भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं बनता।

203. सुरापात्र अग्नि में जलाने पर भी शुद्ध नहीं होता। इसी प्रकार जिसके मन में मैल हो, वह दुष्ट चाहे सैकड़ों तीर्थ-स्नान कर ले, कभी शुद्ध नहीं होता।

204. जो जिसके गुणों को जानता ही नहीं वह यदि उसकी निन्दा करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! जैसे किराती (भीलनी) हाथी के मस्तक की मोती को छोड़कर गुंजा की माला पहनती है।

मौन

205. मौन रहना एक प्रकार की तपस्या है। जो व्यक्ति केवल एक वर्ष तक मौन रहता हुआ भोजन करता है उसे करोड़ों युगों तक स्वर्गलोक के सुख प्राप्त होते हैं।

विद्यार्थी के लिए न करने योग्य बातें

206. काम, क्रोध, स्वाद, शृंगार, कौतुक, अधिक सोना, अधिक सेवा करना, इन आठ कामों को विद्यार्थी छोड़ दें।

ऋषि

207. जो ब्राह्मण बिना जोती भूमि से फल, मूल आदि का भोजन करता है, सदा वन में रहता है तथा नित्य श्राद्ध करता है, उसे ऋषि कहा जाता है।

208. दिन में एक बार ही भोजन करने वाला, अध्ययन, तप आदि छह कार्यों में लगा रहने वाला तथा ऋतुकाल में ही पत्नी से संभोग करने वाला ब्राह्मण द्विज कहा जाता है ।

वैश्य

209. जो ब्राह्मण सांसारिक कार्यों में लगा रहता है । पशु पालता है, व्यापार तथा खेती करता है, उसे वैश्य कहा जाता है ।

बिलौरा

210. दूसरे का काम बिगाड़ने वाले, दम्भी, स्वार्थी, छली-कपटी, द्वेषी, मुंह से मीठा किन्तु हृदय से क्रूर ब्राह्मण (बिल्ला) कहा जाता है ।

म्लेच्छ

211. बावड़ी, कुएं, तालाब, देवमंदिर आदि को निडर होकर नष्ट करने वाला ब्राह्मण म्लेच्छ कहा जाता है ।

चांडाल

212. जो ब्राह्मण देवताओं की या गुरुओं की वस्तुओं की चोरी करता है, दूसरे की स्त्री से संभोग करता है और सभी प्राणियों के बीच में निर्वाह कर लेता है, उसे चांडाल कहा जाता है ।

दान की महिमा

213. महापुरुष भोज्य पदार्थों तथा धन का दान करें । इसका संचय करना उचित नहीं है । कर्ण, बलि आदि की कीर्ति आज तक बनी हुई है । हमारा लम्बे समय से संचित शहद, जिसका हमने दान या भोग नहीं किया नष्ट हो गया है यही सोचकर दुःख से ये मधु-मक्खियां अपने दोनों पांवों को घिसती हैं ।

अध्याय-12

गृहस्थ धर्म

214. जिस घर में निरन्तर उत्सव-यज्ञ पाठ और कीर्तन आदि होता रहता है, संतान सुशिक्षित होती है, स्त्री मधुरभाषिणी, मीठा बोलने वाली होती है । आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

पर्याप्त धन होता है, पति-पत्नी एक दूसरे से अनुरक्त हैं, सेवक स्वामीभक्त और आज्ञापालक होते हैं, अतिथि का भोजन आदि से सत्कार और शिव का पूजन होता रहता है। घर में भोज आदि से मित्रों का स्वागत होता रहता है तथा महात्मा पुरुषों का आना जाना लगा रहता है। ऐसे पुरुष का गृहस्थाश्रम सचमुच ही प्रशंसनीय है।

215. दुःखियों और विद्वानों को जो थोड़ा-सा भी दान देता है उसे उसका अनन्त गुना स्वयं मिल जाता है।

216. जो अपने लोगों से प्रेम, परायों पर दया, दुष्टों के साथ सख्ती, सज्जनों से सरलता, मूर्खों से परहेज, विद्वानों का आदर, शत्रुओं के साथ बहादुरी और गुरुजनों का सम्मान करते हैं, जिन्हें स्त्रियों से लगाव नहीं होता, ऐसे लोग महापुरुष कहे जाते हैं। ऐसे ही लोगों के कारण दुनियाँ टिकी हुई है।

217. जिसने हाथों से दान नहीं दिया, कानों से कोई ज्ञान नहीं सुना, नेत्रों से किसी साधु के दर्शन नहीं किए, पाँवों से कभी किसी तीर्थ में नहीं गए। अन्याय से कमाए धन से पेट भरते हो और घमंड से सिर को तना हुआ रखते हो। अरे गीदड़! इस शरीर को शीघ्र छोड़ दो।

218. मृदंग वाद्य की ध्वनि बहुत अच्छी होती है। मृदंग से आवाज निकलती है–धिक्तान् जिसका अर्थ है उन्हें धिक्कार है। इसके आगे कवि कल्पना करता है कि जिन लोगों को श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अनुराग नहीं, जिनकी जिह्वा को श्रीराधा जी और गोपियों के गुणगान में आनन्द नहीं आता, जिनके कान श्रीकृष्ण की सुंदर कथा सुनने के लिए उत्सुक नहीं रहते, मृदंग भी उन्हें ''धिक्कार है धिक्कार है'' कहता है।

219. यदि करील के पत्ते नहीं आते तो बसंत का क्या दोष? यदि उल्लू दिन में नहीं देखता तो सूर्य का क्या दोष? वर्षा चातक के मुंह में न पड़े तो बादल का क्या अपराध? भाग्य ने जो पहले ही ललाट में लिख दिया उसे कौन मिटा सकता है?

सत्संगति महिमा

220. सत्संगति से दुष्टों में भी साधुता आ जाती है किन्तु दुष्टों की संगति से साधुओं में दुष्टता नहीं आती। मिट्टी ही फूलों की सुगंध को धारण कर लेती है किन्तु फूल मिट्टी की गंध को नहीं अपनाते।

साधु दर्शन का पुण्य

221. साधुओं के दर्शन से पुण्य मिलता है। साधु तीर्थों के समान होते हैं। तीर्थों का फल कुछ समय बाद मिलता है किन्तु साधु समागम तुरंत फल देता है।

तुच्छता में बड़प्पन कहाँ

222. इस नगर में बड़ा कौन है? ताड़ के वृक्ष बड़े हैं। दानी कौन है? धोबी ही यहाँ दानी है, जो सुबह कपड़े ले जाता है और शाम को दे जाता है। चतुर व्यक्ति कौन है? दूसरे का धन तथा स्त्री हरने में सभी चतुर हैं। तब तुम इस नगर में जीवित कैसे रहते हो? बस गंदगी के कीड़े के समान जीवित रहता हूँ।

223. जो घर विप्रों के पैरों के धूल की कीचड़ से नहीं सनते, जिनमें वेद शास्त्रों की ध्वनि नहीं सुनाई देती एवं यज्ञ की 'स्वाहा' आदि ध्वनियों का अभाव रहता है, ऐसे घर श्मशान के समान होते हैं।

रिश्तेदारों के छह गुण

224. सत्य मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है, शांति पत्नी है तथा क्षमा पुत्र है, ये छह ही मेरे सगे-सम्बन्धी हैं।

दुष्ट तो दुष्ट ही है

225. चौथी अवस्था में भी जो दुष्ट होता है, दुष्ट ही रहता है। अच्छी तरह पक जाने पर भी इन्द्रवारुण (एक प्रकार का खट्टा फल) का फल मीठा नहीं होता।

अनुराग ही जीवन है

226. जिस प्रकार यजमान से निमंत्रण पाना ही ब्राह्मणों के लिए प्रसनन्ता का अवसर होता है अर्थात् निमंत्रण पाकर ब्राह्मणों को स्वादिष्ट भोजन तथा दान-दक्षिणादि सुलभ होते हैं और हरी घास मिल जाना गौओं के लिए उत्सव अथवा प्रसन्नतादायक बात होती है, इसी प्रकार पति की प्रसन्नता स्त्रियों के लिए उत्सव के समान होती है, परन्तु मेरे लिए तो भीषण रणों में अनुराग ही जीवन की सार्थकता अर्थात् उत्सव है।

227. दूसरों की स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सभी प्राणियों को अपने समान देखने वाला ही सच्चे अर्थों में ऋषि और विवेकशील पण्डित कहलाता है।

राम की महिमा

228. धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों के साथ निष्कपटता, गुरु के प्रति विनम्रता, चित्त में गंभीरता, आचरण में पवित्रता, गुणों के प्रति आदर, शास्त्रों का विशेष ज्ञान, रूप में सुंदरता तथा शिव में भक्ति ये सब गुण एक साथ हे राघव ! आप में ही हैं।

229. कल्पवृक्ष काष्ठ है। सुमेरु पहाड़ है। पारस केवल एक पत्थर है। सूर्य की किरणें तीव्र हैं। चन्द्रमा घटता रहता है। समुद्र खारा है। कामदेव का शरीर नहीं है। बलि दैत्य है। कामधेनु पशु है। हे राम ! मैं आपकी तुलना किसी से नहीं कर पा रहा हूँ। आपकी उपमा किससे की जाए ?

सीख कहीं से भी ले लो

230. व्यक्ति सभी से कुछ न कुछ सीख सकता है । उसे राजपुत्रों से विनयशीलता और नम्रता की, पंडितों से बोलने के उत्तम ढंग की, जुआरियों से असत्य-भाषण के रूप भेदों की तथा स्त्रियों से छल-कपट की शिक्षा लेनी चाहिए ।

सोचकर काम करें

231. बिना सोचे समझे व्यय करने वाला, अनाथ, झगड़ालू तथा सभी जातियों की स्त्रियों के लिए व्याकुल रहने वाला व्यक्ति शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

232. एक-एक बूंद डालने से क्रमशः घड़ा भर जाता है । इसी तरह विद्या, धर्म और धन का भी संचय करना चाहिए ।

अध्याय-13

कर्म की प्रधानता

233. उज्ज्वल कर्म करने वाला मनुष्य क्षण भर भी जीये तो अच्छा है किन्तु दोनों लोकों के विरुद्ध काम करने वाले मनुष्य का एक कल्प तक जीना भी व्यर्थ है ।

बीती ताहि बिसार दे

234. बीती बात पर दुःख नहीं करना चाहिए । भविष्य के विषय में भी नहीं सोचना चाहिए । बुद्धिमान लोग वर्तमान समय के अनुसार ही चलते हैं ।

मीठे बोल

235. देवता, सज्जन और पिता स्वभाव से, भाई-बंधु स्नान-पाप से तथा विद्वान् मधुर वाणी से प्रसन्न होते हैं ।

236. महापुरुषों का चरित्र भी विचित्र होता है । लक्ष्मी को मानते तो वे तिनके के समान हैं, किन्तु उसके भार से दब जाते हैं ।

अति स्नेह ही दुःख का मूल है

237. किसी के प्रति प्रेम होता है उसे उसी से भय भी होता है । प्रीति दुःखों का आधार है । स्नेह ही सारे दुःखों का मूल है ।

अतः स्नेह-बंधनों को तोड़कर सुखपूर्वक रहना चाहिए ।

भविष्य के प्रति जागरूक रहें

238. जो व्यक्ति भविष्य में आने वाली विपत्ति के प्रति जागरूक रहता है और जिसकी बुद्धि तेज होती है । ऐसा ही व्यक्ति सुखी रहता है । इसके विपरीत भाग्य के भरोसे बैठा रहने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है ।

यथा राजा तथा प्रजा

239. राजा के पापी होने पर प्रजा भी पापी, धार्मिक होने पर धार्मिक तथा सम होने पर प्रजा भी सम हो जाती है । प्रजा राजा के समान ही बन जाती है ।

धर्महीन मरे हुए के समान है

240. धर्म से हीन प्राणी को मैं जीते जी मृत समझता हूँ । धर्मपरायण व्यक्ति मृत भी दीर्घजीवी है । इसमें कोई संदेह नहीं है ।

241. धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से जिस व्यक्ति को एक भी नहीं मिल पाता उसका जीवन बकरी के गले के स्तन के समान व्यर्थ है ।

242. दुष्ट व्यक्ति दूसरे की उन्नति को देखकर जलता रहता है । वह स्वयं उन्नति नहीं कर सकता । इसलिए वह निन्दा करने लगता है ।

243. बुराइयों में मन को लगाना ही बंधन है और इनसे मन को हटा लेना ही मोक्ष का मार्ग दिखाता है । इस प्रकार यह मन ही बंधन या मोक्ष देने वाला है ।

244. परमात्मा का ज्ञान हो जाने पर शरीर का अभिमान गल जाता है । तब मन जहाँ भी जाता है उसे वही समाधि लग जाती है ।

संकोच करना चाहिए

245. मन के चाहे सारे सुख किसे मिले हैं ? क्योंकि सब कुछ भाग्य के अधीन हैं । अतः संतोष करना चाहिए ।

246. जैसे हजारों गायों में भी बछड़ा अपनी ही माँ के पास जाता है, उसी तरह किया हुआ कर्म कर्त्ता के पीछे-पीछे जाता है ।

247. जिसका चित्त स्थिर नहीं होता उस व्यक्ति को न तो लोगों के बीच में सुख मिलता है और न वन में ही । लोगों के बीच में रहने पर उनका साथ जलाता है तथा वन में अकेलापन जलाता है ।

सेवा भाव

248. जैसे फावड़े से खोद कर भूमि से जल निकलता जाता है । उसी प्रकार सेवा करने वाला विद्यार्थी गुरु से विद्या प्राप्त करता जाता है ।

पूर्वजन्म

249. यद्यपि मनुष्य को फल कर्म के अनुसार मिलता है और बुद्धि भी कर्म के अधीन है तथापि बुद्धिमान व्यक्ति विचार करके ही काम करता है ।

गुरु महिमा

250. जो एकाक्षर का ज्ञान देने वाले गुरु की वंदना नहीं करता, वह सौ बार कुत्ते की योनि में जन्म लेकर फिर चांडाल बनता है ।

251. युग का अंत होने पर भले ही सुमेरु पर्वत अपने स्थान से हट जाए और कल्प का अंत होने पर भले ही सातों समुद्र विचलित हो जाएं, सज्जन अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होते ।

अध्याय-14

पृथ्वी रत्न

252. अन्न, जल तथा सुन्दर शब्द, पृथ्वी के ये ही तीन रत्न हैं । मूर्खों ने पत्थर के टुकड़ों को रत्न का नाम दिया है ।

जैसा बोना वैसा पाना

253. दरिद्रता रोग, दुःख, बंधन और व्यसन सभी मनुष्य के अपराध रूपी वृक्षों के फल हैं ।

शरीर का महत्व

254. व्यक्ति को जीवन में धन, मित्र, पत्नी, पृथ्वी, ये सब फिर-फिर मिल सकते हैं किन्तु एक बार जीवन जाने पर शरीर पुनः नहीं मिल सकता ।

एकता

255. बहुत से छोटे प्राणी भी मिल कर शत्रु को जीत लेते हैं । मूसलाधार वर्षा के पानी को भी तिनके मिला कर रोक देते हैं ।

थोड़ी भी अधिक है

256. जल में तेल, दुष्ट से कही गई गुप्त बात, योग्य व्यक्ति को दिया गया दान तथा बुद्धिमान को दिया गया ज्ञान थोड़ा-सा होने पर भी अपने आप विस्तार प्राप्त कर लेते हैं ।

वैराग्य महिमा

257. धार्मिक कथाओं को सुनने पर शमशान में तथा रोगियों को देखकर व्यक्ति की बुद्धि को जो वैराग्य हो जाता है यदि ऐसा वैराग्य सदा बना रहे, तो भला कौन बंधन से मुक्त नहीं होगा ?

करने के बाद क्या सोचना

258. गलती हो जाने पर जो पछतावा होता है, यदि ऐसी मति गलती करने से पहले ही आ जाए तो भला कौन उन्नति नहीं करेगा और किसे पछताना पड़ेगा ।

अहंकार

259. मानव मात्र में कभी भी अहंकार की भावना नहीं रहनी चाहिए बल्कि मानव को दान, तप, शूरता, विद्वता, सुशीलता और नीतिनिपुणता का कभी अहंकार नहीं करना चाहिए

क्योंकि इस धरती पर एक से बढ़कर एक दानी, तपस्वी, शूरवीर और विद्वान् व नीतिनिपुण हैं। कहा भी जाता है कि सेर को सवा सेर बहुत मिल जाते हैं। अतः किसी भी कार्यक्षेत्र में अपने को अति विशिष्ट मानना मूर्खता है। यह अहंकार ही मानव मात्र के दुःख का कारण बनता है और उसे ले डूबता है।

दूरी मन की

260. जो व्यक्ति हृदय में रहता है वह दूर होने पर भी दूर नहीं है। जो हृदय में नहीं रहता वह समीप रहने पर भी दूर है।

261. जिससे अपना कोई कल्याण करना हो उसके सामने सदा मीठा बोलना चाहिए क्योंकि बहेलिया हिरण को मारते समय सुन्दर स्वर में गीत गाता है।

इनके अति निकट न रहें

262. राजा, आग, गुरु और स्त्री इनके अधिक समीप रहने पर विनाश होता है तथा दूर रहने पर कोई फल नहीं मिलता। इसलिए मध्यम दूरी से इनका सेवन करना चाहिए।

ईश्वर सर्वव्यापी है

263. द्विजातियों का देवता अग्नि है। मनीषी लोग अपने हृदय में प्रभु को देखते हैं। अल्पबुद्धि वाले प्रतिमा को प्रभु समझते हैं। समदर्शी सर्वत्र प्रभु को ही देखते हैं।

गुणाहीन का क्या जीवन

264. जिसमें गुण है वही मनुष्य जीवित है। जिसमें धर्म है वही जीवित है। गुण और धर्म से हीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।

265. यदि एक ही कर्म से सारे जगत् को वश में करना चाहते हो तो दूसरों की बुराई करने में लगी हुई वाणी को रोक लो।

266. जो प्रसंग के अनुसार बातें करता है प्रभाव डालने वाला प्रेम करता है तथा अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है उसे पंडित कहते हैं।

चीज एक बातें अनेक

267. एक ही वस्तु – स्त्री के शरीर को कामी लोग कामिनी के रूप में, योगी बदबूदार शव के रूप में तथा कुत्ते मांस के रूप में देखते हैं ।

गोपनीय

268. बुद्धिमान व्यक्ति सिद्ध औषधि, धर्म, अपने घर की कमियाँ, मैथुन, खाया हुआ खराब भोजन तथा सुनी हुई बातों को गुप्त रखते हैं ।

वाणी से गुण झलक जाते हैं

269. कोयल तब तक मौन रहकर दिनों को बिताती है जब तक कि उसकी मधुर वाणी नहीं फूट पड़ती । यह वाणी सभी लोगों को आनंद देती है ।

इनका संग्रह करें

270. धर्म, धन, धान्य, गुरु की सीख तथा औषधि इनका संग्रह करना चाहिए अन्यथा व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता ।

मानव धर्म

271. दुष्टों का साथ छोड़ दो सज्जनों का साथ करो रात-दिन अच्छे काम करो तथा सदा परमात्मा को याद करो । यही मानव का धर्म है ।

अध्याय-15

दयावान बनें

272. जिस मनुष्य का हृदय सभी प्राणियों के लिए दया से द्रवीभूत हो जाता है उसे ज्ञान, मोक्ष, जटा, भस्म-लेपन आदि से क्या लेना ।

गुरु ब्रह्म है

273. जो गुरु एक अक्षर का भी ज्ञान कराता है, उसके ऋण से मुक्त होने के लिए उसे देने योग्य पृथ्वी में कोई पदार्थ नहीं है ।

दुष्टों का उपचार

274. दुष्टों तथा कांटों का दो ही प्रकार का उपचार है। जूतों से कुचल देना या दूर से ही छोड़ देना।

लक्ष्मी कहाँ नहीं ठहरती

275. गंदे वस्त्र पहनने वाले, गंदे दांतों वाले, अधिक भोजन करने वाले, कठोर शब्द बोलने वाले, सूर्योदय से सूर्यास्त होने तक सोते रहने वाले व्यक्ति को लक्ष्मी त्याग देती है। चाहे वह व्यक्ति साक्षात विष्णु ही क्यों न हो।

धन ही सच्चा बंधु

276. संसार की यह रीति है कि यहाँ सारा कारोबार व्यापार धन से चलता है।

277. अन्याय, धूर्ता अथवा बेईमानी से जोड़ा-कमाया धन अधिक-से-अधिक दस वर्षों तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में वह बढ़ा हुआ धन मूल के साथ ही नष्ट हो जाता है। अतः व्यक्ति को कभी अन्याय से धन के अर्जन में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

सत्संगति

278. योग्य स्वामी के पास आकर अयोग्य वस्तु भी योग्य बन जाती है। किन्तु अयोग्य के पास जाने पर योग्य काम की वस्तु भी हानिकारक हो जाती है।

आचरण

279. भोजन वही है जो ब्राह्मणों को खिला देने के बाद बच जाये। प्रेम वही है जो दूसरों पर किया जाए। बुद्धि वही है जो पाप न करे। धर्म वही है जिसे करने में घमंड न हो।

280. भले ही मणि पांव के आगे लोटती हो और कांच सिर पर रखा हो किन्तु क्रय-विक्रय के समय कांच-कांच ही होता है और मणि मणि ही होती है।

तत्त्व ग्रहण

281. शास्त्र अनंत हैं, विद्याएं अनेक हैं, किन्तु मनुष्य का जीवन बहुत छोटा है, उसमें भी अनेक विघ्न हैं । इसलिए जैसे हंस मिले हुए दूध और पानी में से दूध को पी लेता है और पानी को छोड़ देता है । उसी तरह काम की बातें ग्रहण कर लो तथा बेकार की बातें छोड़ दो ।

चांडाल कर्म

282. जो दूर से थककर घर में आए व्यक्ति को या बिना उद्देश्य भी आ गया हो तो उसे भी उचित सम्मान दिए बिना स्वयं भोजन कर लेता है उस व्यक्ति को चांडाल कहा जाता है ।

मूर्ख कौन

283. मूर्ख व्यक्ति चारों वेदों तथा अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़ते हैं । फिर भी जैसे भोजन के रस को करछी नहीं जानती वैसे ही मूर्ख अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं ।

ब्राह्मण को मान दें

284. भवसागर में यह विपरीत चलने वाली ब्राह्मण रूपी नौका धन्य है इसके नीचे रहने वाले तो तर जाते हैं । किन्तु ऊपर बैठे हुए नीचे गिर जाते हैं ।

पराधीनता में सुख कहाँ

285. यह अमृत का कोश, औषधियों का पति, अमृत से बने शरीर वाला चंद्रमा सुंदर कांति वाला होने पर भी सूर्यमंडल में आने पर तेजहीन हो जाता है । दूसरे के घर में आने पर कौन छोटा नहीं होता ।

286. यह भंवरा कमलदलों के बीच में रहता है और कमलदलों का

ही रस पीकर अलसाया रहता है । किसी कारण परदेश आना पड़ा और अब यह कौरया फूल के रस को ही बहुत समझता है ।

ब्राह्मण और लक्ष्मी

287. जिसने क्रुद्ध होकर मेरे पिता समुद्र को पी लिया, जिसने गुस्से में मेरे पति को लात मारी, जो बचपन से ही अपने मुंह में मेरी वैरिणी सरस्वती को धारण करते हैं और जो शिव की पूजा के लिए प्रतिदिन मेरे घर कमलों को तोड़ते हैं । इन ब्राह्मणों ने ही मेरा सर्वनाश किया है । अतः मैं इनके घरों को छोड़े रहूंगी ।

प्रेम बंधन

288. बंधन तो अनेक हैं किन्तु प्रेम की डोर का बंधन अन्य ही है । लकड़ी में छेद करने में भी निपुण भंवरा कमल के कोश में निष्क्रिय हो जाता है ।

दृढ़ता

289. कट जाने पर भी चंदन का वृक्ष सुगंध नहीं छोड़ता । बूढ़ा हो जाने पर भी हाथी अपनी लीलाओं को नहीं त्याग देता । कोल्हू में पेरी जाने पर भी ईख मिठास को नहीं छोड़ देती । इसी प्रकार ग़रीब हो जाने पर भी कुलीन अपने शील गुणों को नहीं छोड़ता ।

पुण्य से यश

290. एक छोटे से पर्वत को आपने हाथों से आसानी से उठा लिया । केवल इसी से आपको स्वर्ग तथा पृथ्वी में गोवर्धन कहा जाता है । आप तीनों लोकों को धारण करने वाले हैं और मैं आपको अपने स्तनों के अगले हिस्से में धारण करती हूँ, किन्तु इसकी कोई गिनती ही नहीं है । अधिक कहने से क्या लाभ ! तो क्या है कृष्ण ! यश भी पुण्य से ही मिलता है ?

अध्याय-16

संतान

291. संसार से मुक्ति पाने के लिए न तो हमने परमात्मा के चरणों का ध्यान किया, न स्वर्ग-द्वार को पाने के लिए धर्म का संचय किया और न कभी स्वप्न में भी स्त्री के कठोर स्तनों का आलिंगन किया। इस प्रकार हमने जन्म लेकर माँ के यौवन को नष्ट करने के लिए कुल्हाड़े का ही काम किया।

स्त्री चरित्र

292. स्त्रियां बात एक से करती हैं, कटाक्ष से दूसरे को ही देखती हैं और मन से किसी तीसरे को चाहती हैं। उनका प्रेम किसी एक से नहीं होता।

293. जो मूर्ख पुरुष मोहवश यह समझता है कि यह कामिनी मुझ पर अनुरक्त हो गई है। वह उसी के वश में होकर खिलौने की चिड़िया के समान नाचने लगता है।

294. कौन ऐसा व्यक्ति है जिसे धन पाने का गर्व न हुआ हो? किस विषयी व्यक्ति के दुःख समाप्त हुए? स्त्रियों ने किसके मन को खंडित नहीं किया? कौन व्यक्ति राजा का प्रिय बन सका? काल की दृष्टि किस पर नहीं पड़ी? किस भिखारी को सम्मान मिला? कौन ऐसा व्यक्ति है जो दुष्टों की दुष्टता में फंसकर सकुशल लौटकर वापस आ सका?

विनाश काले विपरीत बुद्धि

295. सोने की हिरनी न तो किसी ने बनाई और न किसी ने इसे देखा और न यह सुनने में ही आता है कि हिरनी सोने की भी होती है। फिर भी रघुनन्दन की तृष्णा देखिए। वास्तव में विनाश का समय आने पर बुद्धि विपरीत हो जाती है।

महानता

296. गुणों से ही व्यक्ति बड़ा बनता है न कि किसी ऊँचे स्थान पर बैठ जाने से। राजमहल के शिखर पर बैठ जाने पर भी कौआ गरुड़ नहीं बनता।

297. गुण ही सर्वत्र पूजे जाते हैं, धन अत्यधिक होने पर भी सब जगह नहीं पूजा जाता। क्या पूर्ण चन्द्र की संसार में वही वन्दना होती है, जैसी क्षीण चंद्रमा की होती है।

298. दूसरे व्यक्ति यदि गुणहीन व्यक्ति की प्रशंसा करें तो वह बड़ा हो जाता है। अपनी प्रशंसा स्वयं करने पर इन्द्र भी छोटा हो जाता है।

299. गुण भी योग्य विवेकशील व्यक्ति के पास जाकर ही सुंदर लगता है क्योंकि सोने में जड़े जाने पर ही रत्न भी सुंदर लगता है।

300. गुणी व्यक्ति भी उचित आश्रय नहीं मिलने पर दुःखी हो जाता है क्योंकि निर्दोष मणि को भी आश्रय की आवश्यकता होती है।

अनुचित धन

301. दूसरे को दुःखी करके अधर्म से या शत्रुओं की शरण से मिला धन मुझे प्राप्त न हो।

302. वधू के समान घर के अंदर बंद रहने वाली लक्ष्मी क्या काम आती है और जिस लक्ष्मी का वेश्या के समान सभी भोग करते हैं ऐसी लक्ष्मी भी किस काम की?

303. सभी प्राणी धन, जीवन, स्त्री तथा भोजन से सदा अतृप्त रहकर संसार से चले गए, जा रहे हैं और चले जाएंगे।

सार्थक दान

304. सभी यज्ञ, दान, तप आदि नष्ट हो जाते हैं। किन्तु पात्र को दिया गया दान तथा अभयदान का फल नष्ट नहीं होता।

सबसे बुरा है मांगना

305. तिनका हलका होता है, तिनके से हलकी रूई होती है और याचक रूई से भी हलका होता है। तब इसे वायु उड़ाकर क्यों नहीं ले जाती? इसलिए कि वायु सोचती है कि कहीं यह मुझसे भी कुछ मांग न बैठे।

मीठे बोल

306. प्रिय मधुर वाणी बोलने से सभी मनुष्य संतुष्ट हो जाते हैं। अतः मधुर ही बोलना चाहिए। वचनों का ग़रीब कोई नही होता।

307. इस संसार रूपी वृक्ष के अमृत के समान दो फल हैं – मधुर बोलना तथा सज्जनों की संगति करना।

308. जन्म-जन्म तक अभ्यास करने पर ही मनुष्य को दान, अध्ययन और तप प्राप्त होते हैं। इसी अभ्यास से प्राणी बार-बार इन्हें करता है।

विद्या और धन समय के

309. विद्या पुस्तक में ही है और जो धन दूसरे के हाथ में चला गया है ये दोनों चीजें समय पर काम नहीं आती।

अध्याय-17

ज्ञान गुरु कृपा का

310. जो व्यक्ति केवल पुस्तकों को पढ़कर विद्या प्राप्त करता है, किसी गुरु से नहीं, उस व्यक्ति का किसी सभा में अवैध सम्बन्ध से गर्भवती हुई स्त्री के समान कोई आदर नहीं होता।

311. उपकारी के साथ उपकार, हिंसक के साथ प्रतिहिंसा करनी चाहिए तथा दुष्ट के साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है।

तप की महिमा

312. जो वस्तु दूर है, दुराराध्य है, दूर स्थित है, वह सब तप से साध्य है । तप सबसे प्रबल वस्तु है ।

313. लोभी को दूसरों के अवगुणों से क्या लेना? चुगलखोर को पाप से क्या? सच्चे व्यक्ति को तपस्या से क्या? मन शुद्ध है, तो तीर्थों से क्या? ख्याति होने पर बनने-संवरने से क्या? सद्विद्या होने पर धन से क्या? बदनामी होने पर मृत्यु से क्या?

विडम्बना

314. जिसका पिता रत्नों की खान समुद्र है और सगी बहन लक्ष्मी है ऐसा शंख भिक्षा मांगता है । इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है?

लाचारी

315. शक्तिहीन व्यक्ति साधु बन जाता है, निर्धन ब्रह्मचारी बन जाता है, रोगी भक्त कहलाने लगता है और वृद्धा स्त्री पतिव्रता बन जाती है ।

माँ से बढ़कर कौन

316. अन्न और जल के दान के समान कोई दान नहीं है । द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं है । गायत्री से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है । माता से बढ़ कर कोई देवता नहीं ।

दुष्टता

317. सर्प के दाँत में, मक्खी के सिर में, बिच्छू की पूंछ में और दुष्ट के पूरे शरीर में विष होता है ।

कुपत्नी

318. अपने पति की आज्ञा के बिना उपवास लेकर व्रत करने वाली पत्नी पति की आयु को हर लेती है । ऐसी स्त्री अंत में नरक में जाती है ।

पति परमेश्वर

319. स्त्री न दान से, न सैंकड़ों व्रतों से न तीर्थों की यात्रा करने से उस प्रकार शुद्ध होती है जिस प्रकार अपने पति के चरणों को धोकर प्राप्त जल के सेवन से शुद्ध होती है ।

सुंदरता

320. दान से ही हाथों की सुंदरता है, न कि कंकण पहनने से । शरीर स्नान से शुद्ध होता है न कि चंदन लगाने से । तृप्ति मन से होती है, न कि भोजन से । मोक्ष ज्ञान से मिलता है, न कि शृंगार से ।

शोभा

321. नाई के घर में केश कटवाने और दाड़ी बनवाने से, पत्थर में घिसे चंदन आदि लगाने से तथा जल में अपना रूप देखने से इन्द्र की भी शोभा नष्ट हो जाती है ।

खोया पाया

322. तुंडी के सेवन से बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाती है । वच के सेवन से बुद्धि का शीघ्र विकास होता है । स्त्री के साथ संभोग करने से शक्ति तत्काल नष्ट हो जाती है तथा दूध के प्रयोग से खोई हुई ताकत फिर वापस लौट आती है ।

सुगृहिणी की महिमा

323. जिस घर में शुभ लक्षणों वाली स्त्री हो, धन-सम्पत्ति हो, विनम्र गुणवान पुत्र हो और पुत्र का भी पुत्र हो, तो स्वर्गलोक का सुख ऐसे घर से बढ़कर नहीं होता ।

गुणहीन पशु

324. भोजन, नींद, भय तथा मैथुन करना, ये सब बातें मनुष्यों एवं पशुओं में समान रूप से पायी जाती हैं । किन्तु ज्ञान मनुष्य

में ही पाया जाता है । अतः ज्ञान रहित मनुष्य को पशुओं के समान समझना चाहिए ।

325. मद से अंधे बने मूर्ख हाथी ने अपने कानों के पास मंडराने वाले भंवरों को कान से उड़ा दिया । भला इससे भंवरों का क्या घटा, हाथी के गंडस्थलों की शोभा कम हो गयी । भंवरे तो फिर कमलों के वन में चले जाते हैं ।

कौन-कौन दूसरों के दुःख को नहीं जानते

326. राजा, वेश्या, यजमान, अग्नि, चोर, बालक, याचक और ग्रामकंटक ये आठ लोग व्यक्ति के दुःख को नहीं समझते ।

327. हे बालिके ! नीचे भूमि में क्या देख रही हो ? मूर्ख ! क्या नहीं जानते हो कि मेरे यौवन का मोती खो गया है ?

गुण बड़ा दोष छोटे

328. हे केतकी ! भले ही तू सांपों का घर है, फलहीन है, कांटों वाली है, वक्र (टेढ़ी) है, कीचड़ में उगी हुई और तुझ तक कठिनाई से पहुँचा जाता है । फिर भी सुगंध के कारण तू सबकी प्रिय है ।

329. जवानी, धन-सम्पत्ति की अधिकता, अधिकार और विवेकहीनता– इन चारों में से प्रत्येक बात अकेली ही मनुष्य को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है ।

330. जिनके हृदय में परोपकार की भावना होती है उनकी विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं तथा पग-पग पर सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं ।

अध्याय-18

प्रशंसा के योग्य

331. वे ही पुत्र पुत्र कहलाते हैं जो पिता के भक्त हैं । जो पुष्टि करने में समर्थ हैं, वही पिता कहलाता है । मित्र वही है जिसमें विश्वास है और स्त्री वही उत्तम है, जिससे पति को शांति मिलती है ।

शत्रु रूपी माता पिता

332. वह माता शत्रु है और पिता वैरी है, जिन्होंने बालक को नहीं पढ़ाया। उनका बालक सभा में उसी प्रकार बुरा लगता है जैसे हंसों की पंक्ति में बगुला।

हित का उपदेश

333. समर्थ हृष्ट-पुष्ट के लिए कोई वस्तु भारी नहीं। परिश्रमी के लिए कोई स्थान दूर नहीं। विद्वान् के लिए कोई विदेश नहीं और प्रियभाषी के लिए कोई पराया नहीं।

मनुष्य की परीक्षा

334. जैसे भट्टी पर घिसने काटने, अग्नि में तपाने और पीटने रूपी चार प्रकार की क्रियाओं से सोने की जांच की जाती है। इसी प्रकार त्याग, सत् स्वभाव सद्गुण और सत्कर्म से व्यक्ति की परीक्षा की जाती है।

सुपुत्र

335. रात्रि का दीपक चन्द्र है, दिन का दीपक सूर्य है। त्रिलोकी का दीपक धर्म है और सुपुत्र कुल का दीपक है।

गुणों की महिमा

336. फलयुक्त वृक्ष झुक जाते हैं, गुणी लोग नम्र हो जाते हैं। सूखा काठ और मूर्ख टूट जाते हैं, परन्तु झुकते नहीं।

कारण महिमा

337. कोई किसी का मित्र नहीं और कोई किसी का शत्रु नहीं। कारणों से लोग मित्र एवं शत्रु बन जाते हैं।

नीतिवचन

338. व्यसनी को नींद कहाँ, लोभी के संतोष कहाँ, निर्धन को सुख कहाँ और दुर्जन को क्षमा कहाँ होती है।

सुख-दुःख चक्र के समान

339. सुख के पश्चात् दुःख और दुःख के पश्चात् सुख । इस प्रकार मनुष्यों के सुख-दुःख रथ के चक्र की भाँति घूमते हैं ।

नीतिवचन

340. नीच मित्र में विश्वास नहीं होता, दुष्टा भार्या में प्रसन्न्ता नहीं होती, बुरे राज्य में शांति नहीं मिलती और बुरे देश में जीवन का निर्वाह नहीं होता ।

किन का शेष हानिकार है

341. ऋण का शेष, आग का शेष और रोग का शेष नहीं रहने देना चाहिए । क्योंकि यह बचा हुआ फिर बढ़ जाता है ।

सब का भूषण शील

342. धीर पुरुषों का भूषण विद्या है, राजाओं का भूषण उनके मंत्री है । स्त्रियों का भूषण उनके पति हैं और सभी का भूषण सच्चरित्र है ।

पुरुषार्थ की प्रशंसा

343. उन पुरुषार्थ की कृपा से अनेक प्रकार की कलाएँ उद्‌भुत होती हैं । जो होना है वही होगा ऐसा कायर ही कहते फिरते हैं ।

व्याधि पाप एवं दुःख के कारण

344. पापों का मूल लोभ है, रोगों का मूल स्वाद है, दुःखों का मूल आसक्ति है । इन तीनों का त्याग करके ही व्यक्ति सुखी हो सकता है ।

6. भर्तृहरिशतक

अल्पज्ञानी की निन्दा

1. ज्ञानहीन पुरुष को सुगमता से समझाया जा सकता है। और विशिष्ट ज्ञानी को तो उससे भी अधिक सुगमता से अनुकूल बनाया जा सकता है। परन्तु अल्पज्ञान से पण्डिताभिमानी पुरुष को तो ब्रह्मा भी अनुकूल नहीं बना सकते।

2. मगरमच्छ के मुख की दाढ़ों के बीच में से बलपूर्वक मणि निकाली जा सकती है। उत्ताल तरंगों से विक्रान्त समुद्र में भी तैरा जा सकता है। क्रुद्ध सर्प को फूल के समान सिर पर रखा जा सकता है। परन्तु अल्पज्ञान से अभिमानी मूर्ख के चित्त को अनुकूल बना सकना असम्भव है।

3. भगवान् ने विद्वज्जनों की समाज में विशेष रूप से मूर्खों द्वारा अपनी मूर्खता को छिपाने के लिए अत्यंत गुणयुक्त सदा अपने अधीन एक साधन का निर्माण किया है और वह साधन अज्ञानियों का भूषणरूपी मौन है।

अल्पज्ञ का वर्णन

4. जब मुझे थोड़ा-सा ज्ञान हुआ, तो मैं मदमत्त हाथी की भाँति अन्धा हो गया। मेरे मन में यह अहंकार हो गया कि मैं सभी कुछ जानता हूँ। परन्तु जब मैंने बुद्धिमानों से कुछ-कुछ सीखा, तो मैं मूर्ख हूँ यह जान कर मेरा वह अभिमान ज्वर की भाँति उतर गया।

मूर्ख की कोई औषध नहीं

5. जल से अग्नि शांत की जा सकती है। छाते से सूर्य की धूप रोकी जा सकती है। मदमत्त हाथी तीखे अंकुश से और गौ तथा गधा दण्ड से वश में किए जा सकते हैं। औषध-प्रयोग से रोग और मन्त्र-प्रयोग से विष दूर किए जा सकते हैं।

शास्त्र में सभी की औषध का विधान किया गया है, परन्तु मूर्ख की कोई औषध नहीं बताई गई ।

मनुष्यरूपी पशु

6. जिन में न विद्या, न तप, न दान, न ज्ञान, न सत्यस्वभाव, न गुण और न धर्म है, वे पृथिवी पर मानव-समाज में भाररूप हुए मनुष्य की आकृति में पशु होकर विचर रहे हैं ।

विद्वानों की महत्ता

7. विद्यारूपी धन चोर के द्वारा थोड़ा-सा भी चुराया नहीं जाता, वह सदा कल्याण को पुष्ट करता है, पात्रों को प्रदान करने से सदा बढ़ता है और प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होता । वह विद्यारूपी धन जिनके पास है, हे नृप-मण्डल, उन विद्वानों से कौन स्पर्धा कर सकता है । अतः उनके प्रति अपने बड़प्पन का भाव छोड़ दीजिए ।

8. हे राजन्, परोपकारी विद्वानों का अपमान मत कीजिए । उन्हें तिनके के समान यह क्षुद्र लक्ष्मी अपने कार्यक्रम से विचलित नहीं कर सकती । जैसे नए मद के फूटने पर श्यामल कपोलों वाले हाथियों को बिस (मे) की तारें (तालाब में विचरने से) नहीं रोक पाती ।

सबसे उत्तम वाणी का भूषण

9. मनुष्य को सुवर्णनिर्मित बाजूबंद (भुजबन्द) और चन्द्र के समान उज्ज्वल हार सुशोभित नहीं कर पाते । न ही स्नान, न ही चन्दन का लगाया हुआ लेपन, न ही फूल और न ही विविध भूषाओं से भूषित बाल उसकी शोभा को बढाते हैं । केवल एक यह वाणी ही पुरुष को सुभूषित करती है । जिस सुसंस्कृत वाणी को वह धारण कर रहा है । अन्य उपर्युक्त भूषण तो नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वाणी का भूषण सदा भूषण बना रहता है ।

विद्या की महिमा

10. विद्या ही मनुष्य का सर्वोपरि सौन्दर्य है, विद्या ही उसका सुगुप्त धन है । विद्या भोग, यश और सुख के देने वाली है । विद्या गुरुओं की भी गुरु है । प्रवास में विद्या बन्धु है । विद्या ही परम देवता है । राजाओं के द्वारा विद्या की ही पूजा होती है, धन की नहीं होती । अतः जो विद्या से हीन है, वह पशु के सामन है ।

सज्जनों की संगति

11. सत्संग बुद्धि की जड़ता का नाश करता है । वाणी को सत्य से युक्त करता है, मान तथा प्रगति का सूचक है । पाप को परे हटाता है, चित्त को निर्मल करता है और दिशाओं में कीर्ति को फैलाता है । अतः बताइए सत्संगति मनुष्यों के लिए क्या-क्या नहीं कर पाती ?

कवि की प्रशंसा

12. वे पुण्यशाली सरस कविश्वर सदा शिर स्थानीय रहते हैं, जिन के यशरूपी शरीर को जीर्णता और नाश का भय नहीं होता ।

कल्याण का मार्ग

13. पर-प्राण-हानि से पृथकता, पर-धन के अपहरण से निवृत्ति, सत्य-कथन समय पर शक्ति के अनुसार देता, पर-स्त्री-सम्बन्धी चर्चा में मौन, तृष्णा के वेग को रोकना, गुरुओं में नम्रभाव, सभी प्राणियों पर करुणा का भाव—यह उपर्युक्त मार्ग सभी शास्त्रों से सम्मत है तथा कल्याण का मार्ग है ।

उत्तम, मध्यम तथा अधम की पहिचान

14. अधम पुरुष विघ्नों के भय से कार्य आरम्भ नहीं करते । मध्यम जन कार्य को आरम्भ करके विघ्नों से आहत होकर कार्य को छोड़ देते हैं । उत्तम पुरुष कार्य को आरम्भ करके

विघ्नों से आहत हुए भी कार्य को छोड़ते नहीं, प्रत्युत कार्य की समाप्ति करते हैं ।

सज्जनों की चरित्र

15. दुष्टों से मांगना नहीं चाहिए, धन-क्षीण मित्र से भी मांगना उचित नहीं, न्याय वृत्ति में रुचि रखना, प्राण-नाश के भय से भी कलुषित कर्म में अप्रवृत्ति, विपदा के समय में भी पूर्ववत् स्थिति, बड़ों के पद-चिह्नों का अनुगमन—इस उपर्युक्त तीखी तलवार की धार पर चलने के सदृश सज्जनों के कठोर मार्ग का किसने विधान किया है अर्थात् किसी ने नहीं किया वे स्वयं ही इस पथ पर चलते हैं ।

कौन सफल है ?

16. (रथ-चक्र के समान) परिवर्तनशील इस संसार में कौन मरा हुआ फिर पैदा नहीं होता अर्थात् सभी होते हैं । परन्तु वही वास्तव में पैदा हुआ है जिसके कारण वश गौरव को प्राप्त होता है ।

मनस्वी की दो दशाएँ

17. फूलों के गुच्छे (गुञ्चे) के समान मनस्वी पुरुष की दो ही अवस्थाएं होती हैं – प्रथम या तो वह सर्वसाधारण का शिरोमणि होता है अथवा दूसरे वह वन में ही मुरझाकर बिखर जाता है ।

तेजस्वी पुरुष

18. जैसे जड़ अग्निदर्पण (आतिशी शीशा) सूर्य के पाँव (रश्मि) से छुआ हुआ, (क्रोध से) जल उठता है । उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष भी दूसरे से किए हुए अपमान को नहीं सहन करता ।

बलवानों का स्वभाव

19. सिंहशावक भी मद-मलिन हाथियों के गण्डस्थलों पर प्रहार करता है । इसी प्रकार प्राणशक्तिसम्पन्न सत्वों का यह

स्वभाव होता है। आयु का छोटा होना उनके उत्साह के अभाव में कारण नहीं होता।

कौन कैसे नष्ट होता है?

20. दुर्मन्त्रणा से राजा का, आसक्ति से संन्यासी का, लाड़ से पुत्र का, न पढ़ने से विप्र का, दुष्ट पुत्र से कुल का, दुष्टों की संगत से सत्-स्वभाव का, सुरा-पान से लज्जा का, देख-भाल के अभाव में खेती का, प्रवास-निवास से स्नेह का, प्रेम के अभाव में मैत्री का, दुष्ट व्यवहार से उत्कर्ष का और प्रमाद तथा वृथा त्याग से धन का नाश हो जाता है।

धन की तीन प्रकार की गति

21. धन की दान, भोग और नाश—ये तीन ही गतियाँ होती हैं? जो धनी न तो दान करता है और न ही धन का उपभोग करता है, उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश ही होती है।

अवस्था की महिमा

22. कभी कोई मनुष्य इतना धनहीन हो जाता है कि वह जौ की एक मुट्ठी के लिए भी तरसता है। परन्तु वही मनुष्य कभी धन-धान्य से पूर्ण हुआ पृथिवी को भी तिनके के समान समझता है। अतः धनिकों के धनों में (पदार्थों) गुरुता तथा लघुता अनिश्चित होने से उनकी ऊँची या नीची अवस्था ही पदार्थों को गुरुता या लघुता प्रदान करती है।

प्रजा का रजंन

23. हे राजन, यदि आप इस पृथिवी-रूपी गाय का दूध प्राप्त करना चाहते हैं तो बछड़े के समान यह जो जनता है उसे पुष्ट कीजिए। इस जनता के अच्छी प्रकार तथा स्थिर रूप से पुष्ट होने पर ही यह भूमि कल्प लता के समान नानाविध फलों को प्रदान कर देती है।

याञ्चा की निन्दा

24. मेघ के जल-बिन्दु को ही पान करने वाले मित्र चातक, थोड़ी देर के लिए सचेत होकर मेरी बात सुनो—आकाश में बहुत से बादल घूमते-फिरते हैं परन्तु सभी एक जैसे नहीं। इन में से कई तो जल-धाराओं से पृथिवी को आपूरित कर देते हैं परन्तु इनमें से कई निरर्थक गर्जते हैं एक बूंद भी जल नहीं गिराते। परन्तु तुम जिस-जिस मेघ-खण्ड को देखते हो उसी-उसी के आगे जल-प्रार्थना के दीन शब्द मत कहो। अर्थात् पहिचान करके उन्हीं मेघ-खण्डों से माँगो जो जल-दान करते हैं।

दुरात्माओं का स्वभाव

25. दुष्ट पुरुषों का यह प्रकृतिजन्य स्वभाव होता है कि वे निर्दयी होते हैं बिना कारण के झगड़ते हैं उनकी पर-स्त्री और पर-धन में लालसा होती है, वे बन्धुजनों और सज्जनों को सहन नहीं करते।

क्रोधियों की निन्दा

26. अत्युग्र क्रोध सम्पन्न राजाओं का कोई भी अपना नहीं होता। अर्थात् सभी उनकी क्रोध की लपेट में आ जाते हैं। जैसे अग्नि में घृत आदि उत्तम पदार्थों की आहुति देने वाले का भी हाथ यदि यज्ञसंभूत अग्नि से छू जाता है तो वह आग उसके हाथ को जला देती है। आग यह नहीं देखती कि वह तो उसका उत्पादक तथा उत्तम पदार्थों का प्रदान करने वाला है।

सेवाधर्म अतीव कठिन है

27. सेवाधर्म बड़ा जटिल है योगी भी इसका पार नहीं पा सकते। यदि सेवक मौन रहता है तो वह गूँगा कहा जाता है, यदि बोलने में दक्ष है तो उसे वाचाल कहते हैं। यदि पास रहता है तो ढीठ है और यदि दूर रहता है तो असभ्य है, यदि सह

जाता है तो कायर, यदि सहन नहीं करता तो अकुलीन है। ऐसा समझा जाता है।

दुष्टों और सज्जनों की मैत्री का वर्णन

28. दुष्टों की मैत्री दिन के पूर्वाह्न की छाया के समान शुरू-शुरू में बहुत बड़ी परन्तु पीछे क्रम से ह्रास-युक्त होती जाती है। परन्तु सज्जनों की मैत्री दिन के अपराह्न की छाया के समान आरम्भ में थोड़ी परन्तु पीछे क्रम से अधिक-अधिक होती जाती है।

महात्माओं का स्वभाव

29. विपदा में वीरता, उत्कर्ष में क्षमा, सभा में वाक्-कुशलता, युद्ध में विक्रम, यश में प्रीति और वेद-शास्त्र में रुचि—ये उपर्युक्त स्वभाव महात्मा जनों का प्रकृतिसिद्ध है।

30. हाथ में प्रशंसनीय दान का भाव, पूजनीय जनों के पगों पर सिर का झुक जाना, मुख में सच्ची वाणी, भुजाओं में विजयशील अतुल पराक्रम, हृदय में निर्मलता के भाव और कानों में सदुपदेश का सुनना—ये उपर्युक्त भाव प्रकृति से ही महान् पुरुषों के भूषण होते हैं जो कि उन्हें धन के बिना ही प्राप्त होते हैं।

31. महान् पुरुषों का चित्त संपदा की अवस्था में कमल जैसा कोमल होता है परन्तु विपदा की अवस्था में पर्वतराज की चट्टानों के समान कठोर होता है।

संगति का महत्व

32. जैसे तपे हुए लोहे पर गिरे हुए जल-कण का नामशेष भी नहीं रहता वहीं जल-कण कमल-पत्र पर पड़ा हुआ मोती के समान चमकता है। स्वाति नक्षण के उदयकाल में वह जल-कण सागर की सीप में पड़ा हुआ साक्षात् मोती बन जाता है। ऐसे ही अधम, मध्यम और उत्तम पुरुषों के संग से प्रायः मनुष्यों में गुणावगुण भाया करते हैं।

गुरु, स्त्री तथा मित्र की पहिचान

33. पुत्र वही है जो अपने सुकर्मों से पिता को प्रसन्न करता है पत्नी वही है जो अपने भर्ता का हित चाहती है । मित्र वही है जो सुख-दुःख में समान व्यवहार वाला होता है । इन पुत्र, पत्नी और मित्र—तीनों को संसार में पुण्यात्मा जन ही प्राप्त करते हैं ।

परोपकारियों का स्वभाव

34. फलों के उद्‌गम पर वृक्ष झुक जाते हैं । नये-नये जलों से सम्पन्न मेघ अधिक नीचे होते जाते हैं । समृद्धि के होने पर सज्जन पुरुष विनीत हो जाते हैं । परोपकारियों का ऐसा ही तो स्वभाव होता है ।

परोपकार की महिमा

35. कान कुण्डलों से सुशोभित नहीं होते, प्रत्युत सदुपदेश के श्रवण से सुशोभित होते हैं । हाथ कंगण से नहीं, प्रत्युत दान से अलंकृत होते हैं । दयालु पुरुषों की काया चन्दन से नहीं, प्रत्युत परोपकार से सुभूषित होती है ।

सच्चे मित्र की पहिचान

36. सज्जन लोग सच्चे मित्र का यह लक्षण बताते हैं कि —वह पाप से हटाता है और हित के कार्यों में लगाता है । मित्र के रहस्यों को छिपाए रखता है । परन्तु गुणों को प्रकट करता है, विपदा के समय अलग नहीं होता और समय पर सहायता देता है ।

चार प्रकार के पुरुष

37. (1) सज्जन वे होते हैं, जो अपने स्वार्थ का परित्याग करके परार्थ को सिद्ध करते हैं । (2) सामान्य पुरुष वे होते हैं जो अपने स्वार्थ को क्षति पहुँचाए बिना परार्थ की सिद्धि के लिए यत्न करते हैं । (3) वे मनुष्यरूपी राक्षस हैं जो अपने स्वार्थ के लिए पर-हित का नाश करते हैं । परन्तु (4) जो निरर्थक

ही पर-हित का नाश करते हैं वे किस गणना में आ सकते हैं– यह हम जानते नहीं ।

सच्ची मित्रता

38. सज्जन पुरुषों की मैत्री तो उत्तरोतर प्रकार से होती है–पहले अपने अन्दर मिले हुए जल को दूध ने अपने सभी गुण दे दिए जब जल ने दूध को (कड़ाही) में तपते हुए देखा तो (दूध को जलने से पूर्व) जल ने अपने-आप को जलाना शुरू कर दिया । दूध ने भी अपने मित्र जल को जलने की विपदा में देखा, तो उबल कर अग्नि में गिरने की व्याकुलता दिखाई । परन्तु ऊपर से और जल का छींटा पड़ जाने पर वह उठता दूध शांत हो गया । क्योंकि उसे उसका मित्र मिल गया ।

सज्जनों के लक्षण

39. तृष्णा को काट दीजिए, क्षमा को प्राप्त कीजिए, अभिमान को छोड़ दीजिए । पाप से लगाव मत रखिए, सत्य बोलिये, सज्जनों के पद्चिह्नों पर चलिए, विद्वानों की सेवा कीजिए, मान्यों का मान और पीड़ितों पर दया कीजिए । वे उपर्युक्त सभी क्रियाएँ सज्जनों के लक्षण हैं ।

40. जिनके मन, वचन और शरीर में पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है जो अपनी उपकार की धाराओं से त्रिलोकी को आपूरित करते हैं जो दूसरों के अणु परिमाण वाले छोटे-छोटे गुणों को भी सदा अपने हृदय में पर्वतों के समान महान् करके स्थान देते हैं ऐसे सज्जन संसार में कितने हैं अर्थात् बहुत थोड़ी संख्या में हैं ।

परम भूषण शील है

41. ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण वाणी का संयम, ज्ञान का भूषण शांति, सुने हुए सदुपदेश का भूषण शिक्षा, धन का भूषण सुपात्र में देना, तप का भूषण क्रोध का अभाव, प्रभुता का भूषण क्षमा और धर्म का भूषण निष्कपटता है । परन्तु उपर्युक्त सभी का कारणभूत सच्चरित्र

परम भूषण है ।

धीर की पहिचान

42. नीतिमान् लोग निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी आए चाहे जहाँ मर्जी हो चली जाए, आज ही मृत्यु हो जाए चाहे अति दीर्घकाल में हो, परन्तु धीर पुरुष न्याय-मार्ग से एक पग भी इधर-उधर नहीं हटते ।

पुरुषार्थ

43. शरीरव्यापी आलस्य मनुष्यों का महान् शत्रु है और उद्यम के समान मनुष्यों का बन्धु कोई नहीं । अतः कर्मशील कभी दुःखी नहीं होता ।

सज्जनों की पहिचान

44. कटा हुआ वृक्ष फिर उग आता है, कला-हीन चन्द्र भी फिर बढ़ जाता है । ऐसा विचार हृदय में रखते हुए सज्जन विपदा आने पर दुःखी नहीं होते । वे विपदाएँ अवश्य समाप्त हो जाएँगी—ऐसा विचार करते हैं ।

कर्म की महिमा

45. मनुष्यों को फल कर्म के अधीन मिलता है और उनकी बुद्धि कर्म के पीछे-पीछे चलती है । ऐसा जानते हुए भी बुद्धिमान् को विचार करके ही कार्य करना चाहिए ।

सत्कार्य का महत्त्व

46. हे साधो, अभीष्ट फल को प्राप्त करने की इच्छा से उस शुभ कर्म का आचरण कीजिए जो शुभ कर्म दुष्टों को साधु बना देता है । मूर्खों को विद्वान् और शत्रुओं को हितकारी बना देता है । जो श्रेष्ठ कर्म परोक्ष को प्रत्यक्ष और हालाहल विष को तत्क्षण अमृत बना डालता है ।

विचार कर काम करना चाहिए

47. बुद्धिमान को कार्य के आरम्भ करने से पूर्व बड़े यत्न से उस कार्य के गुण, दोष और परिणाम को अवश्य सोच लेना चाहिए । क्योंकि जल्दी में किए हुए कार्यों का हृदय को संतप्त करने वाला, पैने बाण के समान दुष्परिणाम जब तक

विपदा रहती है तब तक दुःखी करता है ।

प्रश्न तथा उनके उत्तर

48. लाभ क्या है? गुणी पुरुष की संगत । दुःख क्या है? मूर्खों की संगत । कौन-सी हानि है? समय का वृथा गुजार देना । कुशलता क्या है? धर्म में अनुरक्ति । शूर कौन है? जो इन्द्रियों पर विजयी है । प्रियतमा कौन-सी है? अनुकूल चलने वाली । धन क्या है? विद्या । सुख क्या है? विदेश में न जाना । राज्य कौन-सा है? जहाँ आज्ञाएँ मानी जाती हैं ।

सच्चरित्र का लक्षण

49. हाथ से आघात करके भूमि पर गिराया हुआ गेंद फिर ऊपर उठता है । इसी प्रकार सदाचारियों को प्राप्त हुई विपदाएँ भी अस्थायी हुआ करती हैं । वे सदाचारी फिर गेंद के समान ऊपर उठते हैं ।

धीर की पहिचान

50. वीर पुरुष को यदि पीड़ा भी पहुँचाई जाए तो उसके धैर्य गुण का नाश नहीं किया जा सकता । जैसे जलती हुई अग्नि की लपट का मुँह नीचे भी किया जाए तो भी उसकी लपट नीची नहीं होती वह तो ऊपर ही उठती है ।

सच्चरित्र की महिमा

51. जिस व्यक्ति के शरीर के प्रत्येक अवयव में सभी लोगों को प्रिय लगने वाला शील विकसित हो जाता है, उस पुरुष के लिए आग जल बन जाती है, सागर छोटी सी कूल बन जाता है, महान् पर्वत मेरु छोटी-सी शिला बन जाती है, सिंह, हिरण, साँप, पुष्पमाला और विष अमृत बन जाता है ।

7. कपूरनीति

1. अच्छी बात अच्छी न लगे तो बुरा समय है। अच्छी बात अच्छी लगे तो प्रभुकृपा है। अच्छी बात अच्छी तो लगे परन्तु आप उसे जीवन में न उतारें तो आप प्रभुकृपा को ठुकरा रहे हैं।
2. इच्छाएँ मन की होती हैं जो सदा बढ़ती रहती हैं। ये कभी पूरी नहीं होती जबकि आवश्यकताएं शरीर की होती हैं जो पूरी हो जाती हैं।
3. खाया हुआ भोजन अपना नहीं होता, परन्तु पचाया हुआ भोजन अपना होता है। इसी प्रकार कमाया हुआ धन अपना नहीं होता अपितु परोपकार में लगाया हुआ धन अपना होता है।
4. अंतःकरण के चार भाग होते हैं जिन्हें अंतःकरण चतुष्ट्य कहा जाता है। जैसे मन संकल्प-विकल्प करता है, बुद्धि निर्णय करती है, चित्त याद करता है और अहंकार क्रिया करता है।
5. मन की श्रद्धा से, बुद्धि की विश्वास से, चित्त की तप से और अहंकार की त्याग से शुद्धि होती है।
6. पदार्थ जीवन की आवश्यकताएं हैं इनको त्यागा नहीं जा सकता। परन्तु आवश्यकताएं लोभ न बने तभी शांति मिलेगी। क्योंकि लोभ-वासना धन मांगती है अहंकार वासना प्रभुता मांगती है। काम-वासना रूप मांगती है।
7. वासना उसको देखती है जो हमारे पास नहीं है। अतः वासना प्रतिदिन बड़ी होती जाती है और हम प्रतिदिन छोटे होते जाते हैं। वस्तुतः कुछ भी पाकर हृदय की तरंगें शांत नहीं होती क्योंकि हृदय तो प्रभुमिलन के लिए बना है।

8. आत्म कल्याण के लिये प्रत्येक 5 कार्य करना आवश्यक हैं–(1) ओ३म् का ध्यान (2) वेद का ज्ञान (3) यज्ञ का अनुष्ठान (4) संस्कारी संतान (5) राष्ट्र के लिए बलिदान ।

9. संसार में सब से बड़ा अधिकार सेवा एवं त्याग से प्राप्त होता है ।

10. लगन से व्यक्ति गगन तक पहुँच सकता है । लगन के बिना मन मगन नहीं होता और लगन के बिना भजन नहीं होता ।

11. वही उन्नति कर सकता है जो स्वयं को उपदेश देता है ।

12. प्रभुस्मरण की लगन, संतों की संगति, चरित्र की निर्मलता और उदारता ये चार चीजें व्यक्ति को बड़े भाग्य से मिलती है ।

13. मुँह से निकली बात, कमान से निकला तीर, आयु, सम्मान, बीता हुआ समय ये पाँच बातें कभी भी वापिस नहीं आ सकती ।

14. दूसरों के द्वारा अपने ऊपर किया गया उपकार, अपने द्वारा दूसरों पर किये गये उपकार की अपेक्षा, परमात्मा और मृत्यु इन चार बातों को सदा याद रखें ।

15. खाने को आधा करें, पानी को दो गुणा करें, व्यायाम को तीन गुणा करें और हँसने को चार गुणा करें । यही चार बातें अधिक आयु जीने की कला है ।

16. मन के चार भाग होते हैं । इनको टीम भी कहा जाता है जैसे विचार, भावनाएँ, वृत्ति और स्मृति ।

17. संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं । पहली प्रकार के वे व्यक्ति हैं जिनके पास न तो भौतिक सम्पत्ति है और न ही आध्यात्मिक । दूसरी प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं जिनके पास भौतिक सम्पत्ति तो है परन्तु आध्यात्मिक सम्पत्ति नहीं है । बहुसंख्या ऐसे व्यक्तियों की है । तीसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं जिनके पास आध्यात्मिक सम्पत्ति हैं परन्तु भौतिक नहीं । चौथी प्रकार के ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास भौतिक और

आध्यात्मिक दोनों प्रकार की सम्पत्तियाँ हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं।

18. संसार में किसी को कुछ, किसी को कुछ-कुछ, किसी को बड़ा कुछ तो मिल सकता है परन्तु सब कुछ किसी को कभी नहीं मिलता है। जो व्यक्ति कुछ छोड़ता है उसे कुछ, जो कुछ-कुछ छोड़ता है उसे कुछ-कुछ और जो बहुत कुछ छोड़ता है उसे बहुत कुछ मिलता है। सब कुछ छोड़ने वाले को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह संभव नहीं है सब कुछ किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकता।

19. परमात्मा ने पृथ्वी बनाई और व्यक्ति ने उस पर घर, बाग़ आदि बना दिये। परमात्मा ने पर्वत बनाये और व्यक्ति ने उस पर मार्ग बना दिये। परमात्मा ने संख्या बनाया और व्यक्ति ने उसका कुश्ता बना दिया। परमात्मा ने मिट्टी बनाई और व्यक्ति ने उससे बर्तन खिलौने आदि बना लिये। इसी प्रकार परमात्मा ने पत्थर बनाया व्यक्ति ने शीशा बना दिया।

20. जब व्यक्ति केवल लेना ही चाहता तो वह स्वार्थ होता है। परन्तु जब लेना देना होता तो वह व्यवहार बन जाता है। परन्तु इसके विपरीत जब व्यक्ति केवल देता ही देता है तो वह प्रेम बन जाता है।

21. सबकी माँग एक ही सुख, शांति और आनंद। सुख मिलता है भोग से, शांति मिलती है योग से और आनन्द मिलता है प्रभु की निरंतर अनन्य एवं निष्काम भक्ति से। क्योंकि सुख शरीर, शांति मन और आनंद ही परमात्मा है।

22. मृत्युमुख, सागर, मानव का पेट और इच्छाएं की कभी पूर्ति नहीं हो सकती है।

23. अभिमान भक्ति में बहुत बड़ी बाधा है क्योंकि जहाँ अभिमान होता है वहाँ भगवान् नहीं होते; जहाँ ग़रुर होता है

वहाँ हज़ूर नहीं होते, जहाँ तक़रार होता है वहाँ करतार नहीं होते, जहाँ अहंकार होता है वहाँ ओंकार नहीं होते ।

24. अभिमान 8 प्रकार का होता है–(1) मैं ठीक हूँ, (2) आप गलत हैं । (3) मैं संग्रह करूँ । (4) आप संग्रह न करें । (5) मैं आप पर शासन करूँ । (6) आप मुझ पर शासन न करें । (7) मैं न्यायसंगत हूँ । (8) आप न्यायसंगत नहीं है ।

25. अभिमान के भी मुख्य 8 कारण होते हैं – (1) वंश, (2) शारीरिक बल, (3) सौंदर्य एवं यौवन, (4) स्वजन, (5) धन, (6) सत्ता, (7) ज्ञान, (8) त्याग ।

26. अध्यात्मजगत् का सबसे महत्वपूर्ण शब्द प्रार्थना है । प्रार्थना का अर्थ है प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और जो नहीं मिला उसके लिए गिला न करना ।

27. आँखों की शोभा सुरमे से नहीं शर्म से होती है । शरीर की शोभा शृंगार से नहीं कर्म से होती है । आप मानो या न मानो परन्तु यह सत्य है कि जीवन की शोभा धन से नहीं अपितु धर्म से होती है ।

28. धर्म मन्दिर, मस्जिद, गिरजे या गुरुद्वारे में नहीं है और यह न ही ग्रंथों में है, न ही दुकान पर मोल मिलता है । अपितु यह आचरण की वस्तु है ।

29. आज भक्ति दूषित हो चुकी है क्योंकि इसमें 5 दोष आ गये हैं–व्यापार, व्यवहार, अपराध, राजनीति और तांत्रिक विद्या ।

30. संसार में प्रत्येक व्यक्ति की चार पत्नियाँ हैं जो सदा उसके साथ रहती हैं वे हैं –शरीर, धन, बंधु-बांधव और धर्म । इनमें से केवल धर्म ही मृत्यु के पश्चात् साथ जाता है । शेष सब कुछ यहीं छूट जाता है । अतः व्यक्ति का कल्याण इसी में है कि वह जीवन में धर्म कमाये ।

31. धर्म पति है, राजनीति पत्नी है। पत्नी पर पति का अंकुश जरूरी है। नहीं तो राजनीति बेलगाम वेश्या बन जाएगी और देश में अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनैतिकता, गुंडागर्दी, भ्रष्टाचार छा जाएगा। क्योंकि धर्म का दूसरा नाम मानवता, न्याय और कर्तव्य है।

32. संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। पहले दौलतमंद जो धन को सब कुछ समझते हैं और अत्यंत लोभी व कंजूस होते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है। दूसरी प्रकार के दौलतगंद जो अत्यंत कामुक व विलासी होते हैं ऐसे व्यक्तियों की संख्या भी बहुत कम है। तीसरी प्रकार के दौलतबंद जो धन का प्रयोग केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये ही करते हैं। चौथी प्रकार के दौलतचंद ऐसे व्यक्ति अपनी श्रद्धा व शक्ति अनुसार परोपकार के कार्यों के लिए दान करते हैं। इनकी संख्या भी बहुत कम है।

33. परमात्मा के उत्तम देवालय बनो क्योंकि मानव परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है और यह मानव शरीर बड़े भाग्य से मिला है।

34. संसार का प्रत्येक व्यक्ति आस्तिक है क्योंकि वह आनंद चाहता है। आनंद ही परमात्मा का पर्यायवाची शब्द है। चाहे परमात्मा कहे या आनंद कहे इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है।

35. संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपूर्ण एवं अल्पज्ञ है। वस्तुतः वह गुण व दोष का समन्वय है। पूर्ण केवल परमात्मा है।

36. सत्संग का मानव जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह कहा जाता है जैसा संग वैसा रंग, जैसा पानी वैसी वाणी, जैसा अन्न वैसा मन, जैसा विचार वैसा व्यवहार, जैसी करनी वैसी भरनी।

37. सदा गुणग्राही बनो। दूसरों के अवगुण देखने के स्थान पर औरों के गुण और अपनी गलतियाँ देखने में ही व्यक्ति का कल्याण है। जैसे हंस सदा मोती चुनता है और इसके विपरीत कौआ सदा कूड़ा-कर्कट ही खाता है।

38. केवल डॉक्टर, अध्यापक और वकील को दूसरों के अवगुण देखने का अधिकार है। शेष व्यक्तियों का नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से अन्य व्यक्तियों का कल्याण होता है।

39. हमें भक्त प्रह्लाद से प्रभुभक्ति, एक लव्य से गुरुभक्ति, श्रवणकुमार से पितृभक्ति, महर्षि दधीचि से त्याग, भक्त ध्रुव से तपस्या, श्रीराम से मर्यादा, हनुमान से सेवा, श्रीकृष्ण से कर्म, अर्जुन से वीरता, दानवीर कर्ण से दान, चोर से सावधानी, डाकू से साहस, बिल्ली से बिना आहट चलने की कला, तोते से अनासक्ति, कुत्ते से वफादारी, शेर से स्वावलम्बी होना, गधे से परिश्रम, मुर्गे से उचित समय पर सहवास करने की वृत्ति, फूलों से हँसना सीखकर अपने जीवन को गुणों की खान बनाना चाहिए।

40. आज अधिकतर व्यक्ति तनावग्रस्त हैं। तनाव दूर करने के मुख्य उपाय हैं–संतोष, स्वाध्याय, सत्संग, संयम और सेवा।

41. ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति की जब मृत्यु होती है उसके साथ कुछ भी नहीं जाता है। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि मृत्यु के साथ आत्मा, कारण शरीर, महाकारण शरीर, ज्ञान शरीर, विज्ञान शरीर, दान, संस्कार और धर्म साथ जाते हैं।

42. स्वास्थ्य का अर्थ है कि व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं अर्थ रूप में ठीक हो, न केवल रोगों से मुक्ति या कमजोरी का नाम स्वास्थ्य नहीं है।

43. संसार के प्रत्येक व्यक्ति के स्वस्थ रहने के लिये 5 बातें अवश्य अपनानी चाहिएं–प्रातःजागरण, व्यायाम व प्राणायाम, सात्विक भोजन, संयमित जीवन और प्रभुसमर्पण ।

44. संस्कार का अर्थ है किसी भी वस्तु या व्यक्ति के गुण कर्म और स्वभाव में परिवर्तन करके उससे अत्यधिक उपयोगी बनाना जैसे दांती और आरी को जब तेज करते हैं तो दांती ढेरों घास काट देती है और आरी भी ढेरों लकड़ी काट देती है । संस्कार 5 प्रकार के होते हैं–आत्मा का मूल संस्कार, पूर्वजन्म का संस्कार, माता-पिता के संस्कार, सत्संग के संस्कार और दृढ़ता के संस्कार ।

45. जब मानव को संसार के किसी भी व्यक्ति अथवा पदार्थ में न राग हो न द्वेष हो और राग द्वेष होने का अहंकार भी न हो । वही सच्चा वैराग्य होता है । वैराग्य चार प्रकार का होता है–मसानिया वैराग्य, धक्का वैराग्य, वैराग्य और सर्वोत्तम वैराग्य ।

46. सुख क्षणिक एवं नश्वर होता है । प्रत्येक सुख के साथ दुःख जुड़ा हुआ होता है । परन्तु आनंद स्थायी होता है और यह बढ़ता ही जाता है ।

47. ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों–ब्रह्म एवं चर्य से बनता है इसके अर्थ हैं, प्रभुचिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन, वीर्यरक्षा और जीवन में किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति करना ।

48. गृहस्थ विवाह बंधन व पति-पत्नी के पारस्परिक समर्पण से आरम्भ होता है और उत्तरदायित्व त्यागने पर समाप्त हो जाता है । वस्तुतः चारों आश्रमों में से यह सबसे बड़ा आश्रम है । क्योंकि अन्य सभी आश्रम इसी पर आश्रित हैं ।

49. परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अजर, अमर आदि गुणों से सम्पन्न है, परन्तु इसके विपरीत भगवान् या महापुरुष आध्यात्मिक गुण-ज्ञान, धर्म, वैराग्य और भौतिक गुण, यश, वैभव ईश्वरीय से ओतप्रोत होता है ।

50. आनन्द, जन्म व मृत्यु, 24 घंटे, अल्पज्ञता, अपूर्णता बेमिसाल होना, 96 अंगुल का होना, कर्मों को भोगना, मांग व पूर्ति, लाभ और हानि । ये शाश्वत नियम संसार के प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होते हैं ।

51. धर्म पति है राजनीति पत्नी है ।

52. अभिमान किसी को ऊपर उठने नहीं देता । अतः कभी भी किसी चीज का अभिमान मत करो । इसके विपरीत स्वाभिमान किसी को नीचे झुकने देता ।

53. यदि आप के पास देने के लिए कुछ भी नहीं है तो निराश मत होइए क्योंकि आप सभी को सम्मान तो दे सकते हो ।

54. यदि कार्य को करने में आप दूसरों पर आश्रित होते हैं । आप उतने ही दुःखी होते हैं । परन्तु प्रभुभक्ति सबसे बड़ा सुख है क्योंकि इसमें आपको दूसरों पर आश्रित नहीं होना पड़ता है ।

55. हम उपदेश सुनते हैं मन भर, देते हैं टन भर और अमल करते हैं कण भर । इसीलिये किसी ने सत्य ही कहा है कि संसार का सबसे बड़ा उपदेशक वह है जो स्वयं को उपदेश देता है ।

56. देखना है तो दूसरों की अच्छाइयाँ देखो । छोड़नी है तो एक-एक करके अपनी कमजोरियाँ और बुराइयाँ छोड़ते चलो । आपका जीवन आनंदमय बन जाएगा ।

57. किस्मत से लड़ने में मजा आ रहा है दोस्तो क्योंकि यह मुझे जीतने नहीं दे रही और मैं हार नहीं मान रहा ।

58. पैर की मोच और छोटी सोच ये दोनों व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती हैं ।

59. जब मित्र तरक्की करें तो गौरव से कहें कि वह मेरा मित्र है । परन्तु जब मित्र विपत्ति में हो तो गौरव से कहो कि मैं उसका मित्र हूँ और उसकी सहायता करूँगा ।

60. सफलता तुम्हारा परिचय दुनियाँ से करवाती है कि तुम क्या हो? परन्तु असफलता तुम्हें दुनियाँ का परिचय करवा देती है कि दुनियाँ क्या है?

61. अपने कर्म पर विश्वास रखो न कि राशिफल पर । क्योंकि राम-रावण, कृष्ण-कंस, गांधी-गोडसे, ओबामा-ओसामा इन सब की राशि एक थी परन्तु कर्म अलग-अलग थे ।

62. दीपक बोलता नहीं, प्रकाश से अपना परिचय देता है । आपको भी अपने संबंध में बढ़-चढ़कर बोलने की आवश्यकता नहीं । परन्तु समय आने पर आपके काम ही आपका परिचय दे देंगे ।

63. जब से विश्वास हो गया है कि प्रभु मेरे साथ हैं तभी से मैंने इस बात की परवाह करनी छोड़ दी है कि कौन-कौन मेरे खिलाफ हैं ।

64. केवल चाहने से ही फल झोली में नहीं गिर जाते । कर्तव्य की टहनी को हिलाना पड़ता है । अंधेरे को कोसने से कुछ हासिल नहीं होता, अपने हिस्से का दीपक स्वयं ही जलाना पड़ता है ।

65. ज्ञान का जितना हिस्सा व्यवहार में लाया जा सके वही सार्थक है ज्ञान के जिस हिस्से को व्यवहार में न लाया जा सके वह तो दिमाग़ पर बोझ ही है ।

66. खाया-पीया अंग लगेगा और दान दिया संग चलेगा । लेकिन शेष बचाकर रखे हुए में जंग लगेगा ।

67. सार्थकता उसी शिक्षा की है जो विद्यार्थी को विनम्र, सुशिक्षित और आदर्शवादी व्यक्ति बना सके ।

68. जीवन में किसी का भला करोगे तो लाभ होगा क्योंकि भला का उल्टा लाभ होता है ।

69. जीवन में किसी पर दया करोगे तो याद करेगा क्योंकि दया का उल्टा याद होता है ।

70. संसार के सारे दुःख चित्त की मूर्खता के कारण होते हैं । जितनी मूर्खता शक्तिशाली उतना ही दुःख मजबूत । जितनी मूर्खता कम उतना ही दुःख कम । मूर्खता हटी तो समझो दुःख छूमंतर हो जाएगा ।

71. संसार का सब से बड़ा नेता है—सूर्य । वह आजीवन व्रतशील तपस्वी की तरह निरंतर नियमित रूप से सेवा कार्य में संलग्न है ।

72. संसार का सबसे बड़ा दिवालिया वह है जिसने उत्साह खो दिया है ।

73. संसार में हर वस्तु के अच्छे और बुरे दो पहलू हैं । जो अच्छा पहलू देखते हैं वो अच्छाई और जिन्हें केवल बुरा पहलू देखना आता है वे बुराई संग्रह करते हैं ।

74. संसार में सच्चा सुख परमात्मा और धर्म पर विश्वास रखते हुए पूर्ण परिश्रम के साथ अपना कर्तव्य पालन करने में है ।

75. सब कर्मों में आत्मज्ञान को श्रेष्ठ समझना चाहिए क्योंकि यह सब से उत्तम विद्या है । यह अविद्या का नाश करती है और इससे मुक्ति प्राप्त होती है ।

76. सब से धनी वह नहीं है जिसके पास सब कुछ है बल्कि वह है जिसकी आवश्यकताएं न्यूनतम हैं ।

77. समय मूल्यवान है, इसे व्यर्थ नष्ट न करो । आप समय देकर धन पैदा कर सकते हैं और संसार की सभी वस्तुएं प्राप्त कर

सकते हैं लेकिन स्मरण रहे सब कुछ देकर भी बीता समय प्राप्त नहीं कर सकते ।

78. सेवा का मार्ग ज्ञान, तप, योग आदि के मार्ग से भी ऊँचा है ।

79. स्वार्थ, अहंकार और लापरवाही की मात्रा बढ़ जाना ही किसी व्यक्ति के पतन का कारण होता है ।

80. सारी शक्तियां लोभ, मोह और अहंता के लिये वासना, तृष्णा और प्रदर्शन के लिये नहीं रखनी चाहिए ।

81. स्वाध्याय को साधना का एक अनिवार्य अंग मानकर अपने आवश्यक नित्य कर्मों में स्थान दें । क्योंकि स्वाध्याय आत्मा के लिए उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के लिए भोजन ।

82. सूर्य प्रतिदिन निकलता है और डूबते हुए आयु का एक दिन छीनकर ले जाता है परन्तु मोह माया में डूबे व्यक्ति समझते नहीं कि उन्हें यह बहुमूल्य जीवन क्यों मिला ?

83. साहस ही एकमात्र ऐसा साथी है जिसको साथ लेकर व्यक्ति एकाकी भी दुर्गम दिखने वाले पथ पर चल पड़ता है और लक्ष्य तक जा पहुँचने में समर्थ हो सकता है ।

84. सत्य के समान कोई धर्म नहीं है । सत्य से उत्तम कुछ भी नहीं है और झूठ से बढ़ कर तीव्रतर पाप इस जगत् में दूसरा नहीं है ।

85. सत्य बोलते समय हमारे शरीर पर कोई दबाव नहीं पड़ता लेकिन झूठ बोलने पर हमारे शरीर पर अनेक प्रकार का दबाव पड़ता है । इसलिए कहा जाता है कि सत्य के लिए एक ही और झूठ के लिए हज़ारों बहाने ढूंढने पड़ते हैं । फिर भी झूठ झूठ ही रहता है ।

86. हर व्यक्ति के मन में ही सुख-दुःख और अन्य विषय मूल रूप में मौजूद रहते हैं । जिसने मन को वश में कर लिया वही

सुखी है ।

87. व्यक्ति का शरीर मिट्टी के कच्चे घड़े के समान एक ही क्षण में टूटकर बिखर सकता है । परन्तु जिस प्रकार कच्चे घड़े को सावधानी से उपयोग करें तो वह लम्बे समय तक चल सकता है । वैसे ही यदि मानव अपने शरीर का अत्यंत सावधानी से उपयोग करे तो लम्बे समय तक स्वस्थ रहते हुए जीवित रह सकता है ।

88. संसार में किसी को भी मनचाहा सुख प्राप्त नहीं होता । सामान्यतः सुख-दुःख की प्राप्ति व्यक्ति के हाथ में न होकर परमात्मा के हाथ में है ।

89. जिस प्रकार बछड़ा हज़ारों पशुओं के बीच में अपनी माता को ढूंढ कर उसके निकट पहुँच जाता है और उसका स्तनपान करने लगता है । वैसे ही व्यक्ति का कर्म भी उसका पीछा करता रहता है और उसका फल उसे अवश्य मिलता है ।

90. संत वह होता है जो सत्य से जुड़ा हो और दूसरों को सत्य से जोड़े तथा मन, वचन, कर्म से एक हो ।

91. उत्साह न छोड़ो । विश्वास न तोड़ो । वो दिन भी नहीं रहे और ये दिन भी नहीं रहेंगे ।

92. जीवन की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि आप कितने खुश हैं परन्तु इस बात पर निर्भर करती है कि आपने कितने व्यक्तियों को खुशी दी है ।

93. यदि आप भी अपने कार्यों को कल के भरोसे पर छोड़ देने के आदी हैं तो समझ लेना आप जीवन में बहुत कुछ खोने जा रहे हैं ।

94. अपने जैसा होकर जब कोई व्यक्ति किसी को कुछ नहीं बतलायेगा किसी भी व्यक्ति को कुछ भी नहीं पता चलेगा ।

क्योंकि देवता किसी ने देखे नहीं और जानवरों की बोली समझ में नहीं आती ।

95. अपने को मानव बनाने का प्रयत्न करो यदि इसमें सफलता मिल गई तो हर काम में सफलता मिलेगी ।

96. चट्टान को लोहा तोड़ देता है । लोहे को आग पिघला देती है । आग को जल बुझा देता है । परन्तु व्यक्ति का दृढ़ संकल्प इन सब से शक्तिशाली होता है ।

97. जीवन जीने का अर्थ पेट भरना ही नहीं है । यों तो पक्षी भी चोंच से पेट भर लेते हैं । जीना तो उसी का है जिसके जीने से औरों को जीवन मिलता है ।

98. व्यक्ति जिस संगत में रहता है, वैसा ही बन जाता है । जल की एक बूँद गर्म लोहे पर गिर कर नष्ट हो जाती है जबकि इसके विपरीत वही बूँद कमल के पत्ते पर मोती की भाँति चमकती है ।

99. अध्ययन के लिए एकाग्रता आवश्यक है और एकाग्रता के लिये संयम आवश्यक है और इस प्रकार इंद्रियों पर ही संयम लगाकर हमें एकाग्रता प्राप्त कर सकते हैं ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)